ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ

वर्ष ४

भक्ति

संख्या १०

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

आषाढ़ सम्वत् १९८७

भगवान कृष्ण और दुर्योधन

MAHARATHI PRESS, DELHI.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ४ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ पूर्णिमा सं० १९८७ { अङ्क १०

वेदोपदेश

यस्माज्जातन्न पुराकिंचैनवय आवभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजयासꣳरगणस्त्रीणिज्योतींषि सचेतस षोडशी ॥ १ ॥

जिस से पहिले कुछ भी पैदा नहीं हुआ जो सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त है, वह षोडष अवयव प्रजापति प्रजा द्वारा रमण करता हुआ तीनों जातियों (सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि)को सेवन करता है ॥ १ ॥

येनद्यौरुग्रा पृथिवी च दृढायेनस्वस्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष और पृथ्वी को स्थिर कर रक्खा है जिस ने स्वर्ग को अपने स्थान पर और सूर्य को आकाश में नियत किया है। जो आकाश में जल का उत्पन्न करने वाला है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ २ ॥

यंक्रन्दसीअवसातस्तभानेअभ्यैक्षेताम्मनसा रेजमाने ।
यत्राधिसूर उदितोविभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

जिस परमात्मा को आकाश और पृथ्वी अपना निर्माण कर्ता देखते हैं, जिस की महिमा को अपनी बुद्धि से यह देदीप्यमान आकाश और पृथिवी विचार रहे हैं, जिस परमात्मा की सत्ता से यह सूर्य उदय हो कर जगत को प्रकाशित करता है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा को हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ३ ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वम्भवत्येकनीडम् ।
तमिन्निदः संचविचैति सर्वः सओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ४

ब्रह्मज्ञानि उस ब्रह्म को बुद्धिरूपी गुहा में स्थित नित्य देखता है, जिस में यह विश्व घोंसले में पक्षी की नाई आश्रित है, उसी में यह सब लय होता है वही विभू सब प्रजा में ओत प्रोत है ॥ ४ ॥

प्रतद्वोचे दमृतन्नुविद्वान्गन्धर्वो धामविभृतं गुहासत् ।
त्रीणिपदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद सपितुः पितासत् ॥ ५ ॥

वेद वेत्ता विद्वान ही शीघ्र इस भगवान के उस अमृत सवरूप को जो हृदय रूपी गुहा में स्थित है, सर्ग स्थिति प्रलय रूप से वर्णन करे उस के तीन पाद सर्ग स्थिति प्रलय बुद्धिरूपी गुहा में स्थित हैं जो उस को जानता है, वह पिता का भी पिता है ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कामकर्म मनुष्याणां, संसारगति कारणम् ।
सर्वान्कामान्परित्यज्य, भजेन्नित्यं सनातनम् ॥

प्रतिमा अर्चन निष्ठा ।

मंसाराम–महाराज ! कल आपने माला तिलकादि वेष का माहात्म्य सुनाया था और कई भक्तों की कथायें सुनाई थीं। अब तो भक्तों की कथायें सुनने में मेरा मन ऐसा लग गया है कि ऐसा जी चाहा करता है कि दिन भर रात भर आपके मुख से भक्तों के चरित्र ही सुना करूं घर पर तो मेरा जी एक घड़ी भी नहीं लगता लगे भी कहां से ? एक थी लुगाई वह तो परलोक सिधाई, चार थीं बेटियां, उन्हें ले गये जमाई, बहुओं ने छीन लिये तीनों पूत, न रही पौनी, न रहा सूत, मैं ही रह गया ऊत का ऊत ! फिर घर मन कैसे लगे ? अब तो आपके चरण कमलों के शरण हूं कृपया आज प्रतिमा पूजन की महिमा सुनाइये और जिन भक्तों ने प्रतिमापूजन किया हो, उनकी शुभ कथायें भी सुनाइये !

मस्तराम–भाई मंसाराम ! सर्व शास्त्रों का

मत है कि भगवत् की प्राप्ति के लिये पूजा, अर्चा, जप, मंत्र आदि साधन हैं, पूजा अर्चा बिना भगवत् की प्राप्ति कठिन है। एक दिन दीनवत्सल महाराज विचार करने लगे कि मेरी प्राप्ति मेरी पूजा बिना नहीं होसक्ती, जब यह सिद्धांत है कि पूजा बिना मेरी प्राप्ति नहीं होती और प्रतिमा बिना मेरी पूजा नहीं हो सक्ती, तो जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा ? इस लिये मुझे अपनी प्रतिमा संसार में प्रकट करनी चाहिये ! ऐसा विचार कर भगवत् ने जिस प्रकार भक्तों के हेतु अवतार धारण किये हैं और करते हैं, इसी प्रकार प्रतिमा रूप होकर इस संसार में भगवत् प्रकट हुये। भगवत् की इन प्रतिमाओं में बदरीनारायण; रंगनाथ स्वामी, गोविन्द देव जी आदि कई प्रतिमायें तो स्वयं व्यक्त हुई हैं, जगन्नाथ, आदि कई प्रतिमायें ब्रह्मा शिवादिक देवताओं की स्थापित की हुई हैं और कई ऋषीश्वर मुनीश्वरों की स्थापित की हुई हैं। जब भगवत् ने देखा कि ये सब मूर्तियां भी सबको प्राप्त नहीं हो सक्ती तब भगवत् शालग्राम रूप होकर प्रकट हुये कि सबको प्राप्त हो सकें। जब भगवत् ने देखा कि ये भी सबको प्राप्त नहीं हैं, तब भगवत् ने आज्ञाकी के सोने चांदी और पाषाण आदि की प्रतिमायें बना कर और वेद मंत्रोंके अनुकूल प्रतिष्ठा करके उनका पूजन करें ! इन सब प्रतिमाओं के पूजन और दर्शन में भगवत् ने चमत्कार दिखाये कि जिसने अनन्य होकर आराधन किया, वह सिद्धि को पहुंच गया पश्चात् भगवत् ने करुणा और दयालुता का यहां तक विस्तार किया कि जो कोई चित्रलिख कर अथवा लिखवा कर चित्र को भगवत् जानकर पूजन करता है भगवत् को प्राप्त होता है। हे मंसाराम ! इस भगवत् विग्रह पूजन, दर्शन को भक्तों ने कई प्रकारसे माना है:-

कोई तो उस प्रतिमा को स्वयं भगवत् की प्रतिमूर्ति जान कर इस प्रकार पूजन करते हैं कि प्रथम मानसी पूजन करते हैं और फिर मूर्ति का पूजन करते हैं। कोई २ उस प्रतिमा को पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन मानते हैं, मानसी पूजन का कोई प्रयोजन नहीं रखते। तीसरे यूथ का कथन है कि सच्चिदानन्दघन की वास्तविक मूर्ति लोगों के ध्यान में शीघ्र नहीं आसक्ती इसलिये मुख्य भगवत् स्वरूप में इस मन के जमाने के निमित्त इस मूर्ति का दर्शन और पूजन करते हैं ये सब अपने २ विश्वास और निश्चय के अनुसार अपने मनोरथों को प्राप्त होते हैं। इस से यह बात सिद्ध होगई कि भगवत् ने जगत् के उद्धार निमित्त प्रतिमा रूप से अपना रूप प्रकट किया है, तो अत्यंत उचित हुआ कि भगवद्विग्रह को ईश्वर जानकर दृढ़ विश्वास से दर्शन और पूजन किया जाय।

हे मंसाराम ! हजारों क्या करोड़ों का उद्धार प्रतिमाओं के विश्वास के प्रभाव से हो चुका है और होता रहता है, भागवत् का वचन है कि मुकुंद भगवान् की मूर्ति का दर्शन, मूर्ति के दर्शन करने वाले का दर्शन, मूर्ति के चढ़े हुये पुष्पों का सूंघना, तुलसी दल का खाना, भगवत् मंदिर में जाना और दंडवत् करना, ये सब भगवत् के लोक को प्राप्त कराने वाले हैं, नारदपंच रात्र में लिखा है कि जिस बर्तन में शालग्रामजी को स्नान कराया जाता है, उस बर्तन का सातवीं धराका धोवन गंगा जलके समान माहात्म्य रखता है। जब जल का ही इतना माहात्म्य है तो दर्शनादि का माहात्म्य कितना होगा, यह विचार लेना चाहिये।

फिर भी हे मंसाराम ! भगवत् मूर्ति का यह पूजन आराधन कुछ ऐसा सहज नहीं है कि बाजार से जाकर सौदा खरीद लाये किंतु बहुत कठिन है !

बात यह है कि शास्त्रों के अनुसार भगवत् एक व्यापक और ब्रह्म स्वरूप हैं इसलिये जब तक अन्य विश्वास को और भांति २ की शंकाओं और मन की कचाई को हृदय से दूर करके निज इष्टदेव की मूर्ति में मन न लगेगा तब तक भगवत् की प्राप्ति किस प्रकार हो सक्ती है ? नहीं हो सक्ती। मन भी भगवत् में ऐसा लगे कि न तो दूसरी ओर जाय और न दूसरे की शरण का भरोसा हो, मात्र अपने इष्ट का ही भरोसा हो, इस संबंध में एक दृष्टांत मैं तुझे सुनाता हूं।

एक अर्थार्थी भक्त की कथा।

एक अर्थार्थी भक्त बहुत दिनों तक धन की प्राप्ति की इच्छा से भगवत् का पूजन करता रहा परन्तु बहुत दिनों तक उसे धन न मिला, अन्त में निराश होकर उसने भगवत् मूर्ति तो आले में रख दी और वह किसी के उपदेश से दुर्गा की मूर्ति का पूजन करने लगा एक दिन उसके मन में यह विचार आया कि मैं दुर्गा को जो धूप देता हूं, वह पूथन भगवत् को पहुंचती है, इन्होंने इतने दिनों तक पूजन करने पर भी मेरा मनोरथ सिद्ध न किया। इसलिये उनको धूप न पहुंचनी चाहिये। ऐसा विचार कर वह भगवत् प्रतिमा की नाक में रुई भरने लगा। उसी क्षण भगवत् प्रसन्न होकर बोले कि जो इच्छा हो, सो वर मांग वह कहने लगा कि आप इतने दिनों तक पूजा करने से तो कभी प्रसन्न न हुये और आज इस ढिठाई से इतने कृपायुक्त हुये, इसका क्या कारण है ? भगवत् बोले कि पहिले जब तू पूजन करता था, तब पत्थर की मूर्ति जाना करता था और आज सब तरफ से मन खैंच कर एकाग्र होकर मूर्ति को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जान कर तू मेरी नाक में रुई भरने लगा, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं, भक्तों की भावना और ज्ञान के अनुसार मैं उन पर अनुग्रह करता हूं।

एक बाई की कथा।

गुजरात में एक बाई वात्सल्य भाव से भगवन्मूर्ति की आराधना करती थी। जिस गांव में वह रहती थी, वहां भेड़िये बहुत आने लगे और छोटे २ बच्चों को उठा ले जाने लगे ! बाई यह बात सुनकर चौकन्ना होगई और मूसल हाथ में लेकर सारी रात जागने लगी। बहुत दिनों तक ऐसा करती रही कि दिन भर तो भगवत् के भोग, रसोई और शृंगार में लगी रहती और रात्रि को भेड़ियों से भगवत् की रखवाली किया करती। भगवत् को बड़ी करुणा हुई और साक्षात् पधारे ! घुंघरू आदि आभूषणों की झमझमाहट और ध्वनि सुन कर बाई मूसल उठाकर दौड़ी तो क्या देखती है कि श्याम सुन्दर मोहन रूप कोई बालक आरहा है। बाई ने पूछा कि कौन है ? तो उत्तर दिया कि मैं वह ही ईश्वर परमात्मा हूं कि जिस की मूर्ति का तू बालक जान कर आराधन करती है, जो तुझे इच्छा हो सो मांग ! बाई प्रसन्न होकर बोली कि यदि आप ईश्वर हैं तो यह वर दीजिये कि इस मेरे बालक को भेड़िया न ले जाय ! वाहरी ! बाई ! वाह ! सचमुच तू तो यशोदा मैया है अथवा कौशल्या महारानी है ! हे मंसाराम ! तात्पर्य यह है कि भगवन्मूर्ति में ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि यदि स्वयं भगवत् आकर प्रकट हों, तो भी मूर्ति को ही अपना इष्ट समझता रहे ! यदि दूसरी ओर मन गया तो प्रेम कहां है ? हे मंसाराम ! जिस प्रकार स्त्री को पर पुरुष की शोभा वर्णन करना वर्जित है, इसी प्रकार अपनी इष्टमूर्ति के समान अन्य किसीकी शोभा मनमें न आने पावे क्योंकि मूर्तिकी पूजा प्रकार में यह

बात लिखी है कि जिस प्रकार सेवक अपने स्वामी को अपने प्राणों से अधिक प्यारा जानता है और सब प्रकार की सामग्री बना २ कर स्वामी के सामने रखता है, इसी प्रकार अपनी इष्टमूर्ति की सेवा करनी उचित है। जैसे ग्रीष्म ऋतु हो तो खस की टट्टी पंखा, सुगंध, पानी का छिड़काव, हवादार मंदिर, फूलों के चमक दमक वाले उत्तम अलंकार बना कर एक दिन में कई बार भगवत् का शृंगार करे, इसी प्रकार वर्षा और जाड़े की ऋतु में सब सामग्री ऋतु के अनुकूल रक्खा करे, अर्थात् जैसे अपने सुख और शोभा के लिये जो कुछ सजावट, बनावट की सामग्री, शृंगार की वस्तु और खाने पीनेके पदार्थ इत्यादि एकत्र करता हो, उससे दश गुणा भगवत् के निमित्त करे और जिस दिन होली, दिवाली, दशहरा, बसंत पंचमी आदि कोई त्यवहार हो अथवा सांझी का समय, सावण के महीने में हिंडोरा झुलाने के चरित्र, भगवत् जन्म उत्साह जैसे रामनवमी, जन्माष्टमी, नरसिंह चतुर्दशी, वामन द्वादशी, आदि, अथवा तीर्थ, व्रत का दिन हो, उस दिन धूमधाम के साथ उत्सव और शोभा की सजावट इस प्रकार किया करे, जिस प्रकार कि अपने पुत्र के जन्म अथवा विवाह में किया करते हैं।

हे मंसाराम ! कहां तक वर्णन करूं, यह बात अपने हृदय की प्रीति से संबंध रखती है और भगवत् कृपा से बड़े भाग्य से उदय से होती है। इस देश में ऐसे उत्सव स्वप्नमात्र और आश्चर्य रूप हो गये हैं ! दक्षिण में, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या जी आदि में होते हैं। पंजाब देश में किसी कामदार के स्थान पर एक वृन्दाबनी गोसाईं ने वसन्तपंचमी के दिन फूल डोल बनाया जब कामदार के घर पर इनाम लेने के लिये वेश्यायें आयीं तो कामदार ने गोसाईं जी के संकोचवश उनका गाना न सुना और इनाम देकर विदा कर दिया, गोसाईं जी ने कहा कि भगवत् के सामने राग क्यों नहीं कराया ? तब कामदार कहने लगा कि क्या भगवत् के सामने भी वेश्या का नाच राग होता है ? गोसाईं जी इस प्रकार कहने लगे।

गोसाईं जी—भाई ! यदि भगवत् नृत्य गान के प्रेमी न होते, तो संसार में नाचना गाना होता ही क्यों ? जो कुछ सुख आनन्द का साज समाज गुप्त या प्रकट नेत्रोंसे जहां तक देखने में आता है, सब भगवत् के निमित्त है क्योंकि सब कार्यों के मूल भगवत हैं पूजन के सोलह उपचार जो विख्यात हैं वे भगवन्मूर्ति और मानसी पूजन के निमित्त समान ही हैं। भेद इतना है कि मूर्ति पूजन के निमित्त तो सामग्री प्रत्यक्ष प्रकट करनी पड़ती है और मानसी पूजन के निमित्त मन में प्रकट करनी पड़ती है। सोलह उपचारों के नाम इस प्रकार है।

उपचार-(१) आवाहन, (२) आसन, (३ पाद्य, (४) अर्घ्य, (५) आचमन, ६) स्नान (७) वस्त्र, (८) यज्ञोपवीत, ९) गंध, (१०) पुष्प, (११) धूप, (१२) दीप, (१३) नैवेद्य, (१४ दक्षिण, (१५) नीराजन, (१६) विसर्जन। पूजन करने का प्रकार यह है—

पूजन प्रकार-प्रथम आवाहन उस देवता का करना पड़ता है कि जिसकी कभी किसी दिन पूजा करनी हो और भगवत् पूजन का आवाहन तो इतना ही है कि प्रभात अपने स्वामी को जगाना, दंडवत् करना, जगाने के स्तोत्र या पद पढ़ना, गान करना, दूसरा आसन सिंहासन पर सुन्दर बिछौना बिछाना

और मंदिर की झाड़ू बुहारी करनी, तीसरा पाद्य भगवत् के चरण धोकर अंगोछे से पोंछने, चौथा अर्घ्य-हाथ मुंह धुलाना, पांचवां आचमन-दंतधावन कुल्ली करानी, छठा स्नान कराना, अंगोछे से शरीर पोंछना और धोती कराना, सातवां वस्त्र अलंकार से भूषित करना, आठवां यज्ञोपवीत स्वर्ण का, पाट का अथवा सूत्र का पीला रंग कर पहिनाना, नवमां गंध यानी सुगंध जैसे कि चन्दन, केसर, कस्तूरी इत्र आदि लगाना दसवां-पुष्प भगवत् के मुकुट आदि में फूल गूंथना और फूलों की माला पहिनाना, ग्यारहवां धूप-अगर की बत्ती आदि का धूप देना, बारहवां दीप-गोघृत, कपूरादि से दीपक बालना, तेरहवां नैवेद्य सब प्रकार के पवित्र मधुर भोजन कराना, जल पिलाना, कुल्ला कराना, हाथ धुलाना, अंगोछे से हाथ मुंह पोंछना, बीड़ी बनाकर देनी, चौदहवां दक्षिणा भेट आगे धरना, पंदरहवां नीराजन आरती करनी, प्रदक्षिणा करनी, अपनपे को वारिजाना. पुष्पांजलि देनी अर्थात् भगवत् के ऊपर फूल बखेरना, सोलहवां बिसर्जन-पलंग, तोशक, बिछौना, तकिया, चादर, दुलाई आदि सजाना, इत्र, पान, कुछ भोजन के पदार्थ और पीने के पदार्थ पलंग के समीप रख देना, शयन के समय भगवत् के चरण पलोटना, इस का नाम बिसर्जन है।

हे संसाराम! जगन्नाथ राय जी 'बदरी नारायण जी' अयोध्या, रंगनाथ और वृन्दाबन में भगवान् का सोलह उपचारों नित्य सात बार पूजन होता है कहीं ४ पांच बार और बहुत सी जगह तीन बार होता है, प्रथम प्रभात काल मंगल 'आरती द्वितीय मध्याह काल राजभोग' और तृतीय सायंकाल नियत आरती की जाती है' सात बार पूजन करना उत्तम है' नहीं तो तीन बार होना ही चाहिये। तंत्रशास्त्र और पुराणों के बचन अनुसार बदरीनारायण 'रंगनाथ स्वामी' गोविन्द देव आदि स्वयं व्यक्त मूर्ति 'शालिग्राम मूर्ति' और पुष्कर नैमिषारण्य आदि तीर्थ बारह कोस तक पवित्र करते हैं, देवताओं की स्थापित की हुई मूर्ति चार कोस तक शुद्ध करती हैं, ऋषीश्वर और सिद्धों की स्थापित की हुई दो कोस तक पवित्र करती हैं, शास्त्र मंत्रानुसार स्थापन की हुई एक कोस तक पवित्र करती है और घर में विराजमान की हुई मुर्ति केवल घर को शुद्ध करती है।

हे संसाराम! भगवत् ने कृपा करके जीवके उद्धार हेतु सब सामग्री बना दी है कि किसी प्रकार भगवत् के चरणारविन्द में मन लगे परंतु जीवों के कोई ऐसे दुष्ट कर्म आड़े आगये हैं कि ऐसे सुगम मार्ग में भी मन नहीं लगता! कोई नगर या ग्राम ऐसा नहीं है कि जहां भगवत् मंदिर या ठाकुर द्वारा न हो परन्तु पुजारी के सिवाय अन्य कोई दर्शनों के निमित्त तक जाता हुआ देखने में नहीं आता! विशेष करके धनवान् और बड़े हाकिम घूमने और चकले की शोभा देखने जहां तक कोई उनको ले जाय हजार मन और हजार टांगों से चले जायगें परन्तु यदि कोई ठाकुर द्वारे चलने को कहेगा, तो मानो दम निकल गया है, ऐसे मरे मन से बोलेंगे और हजार बहाने बनाकर मंदिर जाने से रुक जांयगें! यदि घूमते फिरते मार्ग में कोई मंदिर आजायगा तो कहेंगें 'अजी! संध्या होगई है' साबकाश नहीं है, फिर किसी दिन दर्शन करेंगें! यदि घुणाक्षर न्याय से कभी मंदिर जाने का संयोग भी हो गया, तो सारे संसार के झगड़े, बकवाद डिगरी डिसमिस, मारपीट, हारजीत तेजीमंदी, तेरहवीं दृष्टीन, सगाई बिवाह, सभा पंचायत, निन्दा स्तुति

इत्यादि ऊटपटांग बातें याद आजांयगी कि जब तक बैठे रहेंगे, यह ही बातें होती रहेंगी, क्या बात है कि एकबार भगवन्नाम मुख से निकले वरु कोई दूसरा भजन करता होगा, तो उसे भी अपनी ओर सावधान चित्त करलेंगे ! यह वृत्तांत सुना ही नहीं है किंतु आंखो देखा है ! कहां तक कहूं, विस्तारके भय से और तू अथवा तेरा भाई मेरे कथन को अपने ऊपर समझकर अप्रसन्न न हो जांय. इस लिये नहीं कहता !

मंसाराम-महाराज ! ऐसे लोगों में तो प्रथम मुझ मतिमंद की ही गणना है कि कर्म तो खोटे करता हूं और कामना रखता हूं कि अवश्य पर धाम को जाऊंगा, सद्गति होगी ! इस मन पापी को समझाया करता हूं कि अरे पापी मन ! अब तो लजा ! विचार कर देख कि मनुष्य शरीर बारंबार नहीं मिलता, न जाने किस पुण्य से यह सुदुर्लभ नर शरीर मिल गया है ! हे मन ! इस शरीर को पाकर भी यदि तू श्रीनन्दनन्दन स्वामी के चरण कमलों में नहीं लगा, तो तुझसे बढ़कर कौन मंदभागी होगा ? बहुत रुपया कमाना, झूंठ सच बोल कर लोगों को वशीभूत कर लेना यह तो भांड और वेश्याओं को भी याद होता है ! हे मन ! यदि तूने यह शरीर संसार के विषय भोगों के लिये समझ रक्खा है तो ये भोग तो शूकर कूकर गर्दभ आदि को भी प्राप्त हैं. फिर मनुष्य, में और शूकरादि में भेद ही क्या हुआ ? मनुष्य शरीर के प्रभाव से भगवत् की प्राप्ति होती है। यदि भगवच्चरणों में मन न लगा तो शूकरादि से भी मनुष्य शरीर निषिद्ध है क्योंकि उन शरीरों में आने के लिये पाप नहीं होता केवल पूर्व पापों का भोग ही होता है, और मनुष्य को तो भगवद्भजन न करने से हजारों पाप शिर पर चढ़ते हैं, इसलिये हे मन ! इस रूप अनूप का चिन्तवन किया कर !

ध्यान ।

परम पावन वन वृन्दावन में दिनकर कन्या जमुना का सुहावना तट है ! तट के ऊपर भूरी २ शाखा वाला, हरे २ स्निग्ध पात वाला, पोपट की चोंच समान लाल २ फल वाला, घनी छाया वाला पुरातन वट है ! समीप ही श्यामा, गोरी, नीली, पीली, चितकबरी, धौली, कपिला आदि गौओं का जमघट है ! श्री यशोदानन्दन गोपाल, बांके बिहारी नन्दलाल, मुरलीमनोहर घनश्याम शोभा धाम बांकी सजधज के साथ खड़े हुये हैं ! सिर पर मोर पंखों का अनोखा मुकुट है. विशाल माथे पर केसर का खौर लगाये हुये हैं ! खंजन कैसे दोनों कञ्ज नैन अंजन से रंजित हैं, गोल कपोलों पर कल कुंडल शोभित हैं, रूप अनूप है, बांसरी बजा रहे हैं ! बांसरी की अद्भुत ध्वनि सुन कर गौओं ने चारा चरना जुगाली करना छोड़ दिया है, जमुना जी का जल ठहर गया है, चंचल मछलियां अचल हो गई हैं, कछुवे कछुओं अंग सकोड़ कर स्वस्थ होगये हैं, वट के ऊपर के पक्षियों को अपने पराये की खबर नहीं रही है, सब के सब सहज स्वरूप में अवस्थित हैं, इसी लिये भक्त जन वृन्दावन की गौ, पशु पक्षी होने की इच्छा करते हैं !

अस्पृश्य कौन हैं?

"ऐ भोले बालक! यह तू क्या करता है?"

बालक पक्षी की आवाज़ सुन कर चौंक पड़ा और इधर उधर देखने लगा। पक्षी को देख कर उसने कहा "मैं और कुछ नहीं करता, केवल ये खूबसूरत अंडे देखना चाहता हूं।"

पक्षी बोला "ऐ भोले शिशु, मेरे अण्डे भूल कर भी मत छूना। तुम लोग अस्पृश्य हो तुम्हारे छूते ही अण्डा अशुद्ध हो जायगा और इससे इसके अन्दर की मेरी आशा नाश हो जायगी।"

बालक को पक्षी के सरल बचन बड़े सुन्दर लगे, लेकिन उच्च वर्ण होने से स्वभाव वश अपना अपमान न सह सका और कड़क कर बोला, 'क्या हम लोग अस्पृश्य हैं? सावधान! हमारे आश्रय जीने वाले तुम लोग इतने बढ़कर बोलते हो। मैं अभी तुम्हारे नवजात बच्चे का नाश कर डालूंगा।"

पक्षी शान्ति और नम्रता पूर्वक बोला, "ऐ अबोध बच्चे! तुम अभी इसको नहीं जानते। अपने पिता के पास जावो और इसका रहस्य उनसे समझो।

अपमान से मलीन, बदन बालक वृक्ष से उतर अपने घर पहुंचा और पिता से जंगल की सारी बातें कह सुनाईं। पिता को बालक के सरल हृदय पर बड़ी दया आई। वे स्वयं बड़े विद्वान् और भगवत् भक्त थे। उन्होंने बालक को सान्त्वना देते हुये समझाया।

"हम लोगों का शरीर अस्पृश्य था, है और रहेगा। देखो मनुष्य जन्मता है तब उसे कोई स्पर्श नहीं करता और यदि कोई स्पर्श करता है तो शुद्ध होने के निमित्त उसे स्नान करना पड़ता है। लेकिन अन्य सृष्टि में यह बात नहीं है। पशु जगत् में देखो, गाय, अश्व, बकरी, वैगरह जितने भी जीव हैं उन सब के तुरत पैदा हुये बच्चे को छूने पर भी हम लोग अशुद्ध नहीं गिने जाते हैं। इसी तरह उद्भिज और खनिज सृष्टि में भी है। अब पीछे देखो जब मनुष्य मरता है तो उसे स्पर्श करने वाले सब स्नान करते हैं और उसे अशुद्ध समझ, उसके शरीर को कोई भी अपने काम में नहीं लेंगे। बरन या तो उसे जला देते हैं या पृथ्वी में गाड़ देते हैं। लेकिन पशु सृष्टि में पशु के मरने के पीछे भी उसका चर्म, अस्थि आदि प्रायः सभी चीजें हम लोग अपनी आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाते हैं। इसी तरह उद्भिज जगत् में वृक्षादि के नाश होने पर उनकी लकड़ी का बड़ी बड़ी कीमती वस्तुएं इमारतें बनती हैं जो सबको लाभदायक होता हैं। खनिज पदार्थों को तो अग्नि में खूब तपा कर ही काम में लाया जाता है। इस तरह मनुष्यों को छोड़ सब चीजें मरने के बाद काम में लाई जाती हैं। परन्तु मनुष्य अस्पृश्य है इसलिये वह किसी काम का नहीं। अब मध्य की जीवित अवस्था को लो। अगर मनुष्य किसी पक्षी के अंडे को छू दे तो उससे बच्चा ही पैदा न हो। और मनुष्य को अपने आप को हर क्षण बड़ी ही सफाई से रखना पड़ता है, नहीं तो वह अपने लिये भी अस्पृश्य हो जाय। नित्य स्नान करना पड़ता है हाथ आदि तो न मालूम साबुन, मृतिका या केवल जल से कितनी बार साफ करना पड़ता है। परन्तु पशु पक्षी कभी स्नान करे या न करें अशुद्ध नहीं गिने

जाते। मक्षिका विष्टा मूत्र का स्पर्श करके भोजन भी स्पर्श कर देती है तो भी वह अपवित्र नहीं माना जाता। इसी तरह द्विज भी अस्पृश्य नहीं माने जाते। यहां तक कि लकड़ी के द्वारा भयंकर विद्युत धारा का भी स्पर्श किया जा सकता है। मनुष्य शरीर संसार में किसी के भी काम का नहीं है। इसमें यदि कोई गुण है तो केवल एक है जिसके कारण इसके सब अवगुण ढ़के हुये हैं। वह गुण है

'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा'

इसी से देवता गण भी इसके लिये तरसते रहते हैं। मनुष्य में यदि यह गुण नहीं है तो वह अस्पृश्यों का भी अस्पृश्य है। चाहे वह ब्राह्मण हो या चांडाल! मनुष्य के प्रत्येक अवयव भगवदर्थ होने चाहियें। मस्तक भगवान् के आगे झुकाने को, आंखें उनके दर्शन करने को, कान गुणानुवाद सुनने को, मुख गुणानुवाद गाने को, कर उनकी सेवा करने को और पैर उनकी खोज में भ्रमण करने को होने चाहियें। तब तो इस अस्पृश्य देह से भी लाभ है नहीं तो यह किसी काम का नहीं। इसके समान दुनियां की कोई चीज निकम्मी नहीं। अस्पृश्य तो मनुष्य मात्र हैं ही परन्तु जिनमें उपरोक्त गुण हों वे अस्पृश्य होकर भी स्पृश्य ही रहते हैं। उनमें इतनी शक्ति रहती है कि यदि वे चाहें तो अपने स्पर्श से, नाश तो दूर रहा, मृत व्यक्ति को पुनः जीवित कर सकते हैं। यदि इन गुणों का अभाव है तो वह अस्पृश्य ही है फिर वह चाहे ब्राह्मण हो या चांडाल। केवल चांडालादिकों को अस्पृश्य मानने वाले भ्रम में हैं। चांडाल भी यदि उपरोक्त गुणों से युक्त है तो अस्पृश्य नहीं बल्कि मस्तक नवाये जाने योग्य हैं। जैसा कि भागवत् में कहा है:-

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ।
पादारविन्दविमुखात्श्वपचं वरिष्ठम्॥
मन्ये तदर्पित मनो वचने हितार्थं।
प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः॥

चाहे चारों वेदों का विभाग कर्त्ता, अनेक यज्ञों का करने वाला, द्वादश गुण सम्पन्न, धन में कुबेर के समान और जाति का ब्राह्मण हो, परन्तु भगवद्भक्ति से विरुद्ध हो, वह ब्राह्मणों की गणना में नहीं है। जो जातिका चाण्डाल हो, और महापापी हो परन्तु अपने मन, वचन, कर्म, तन, धन और अपने प्राण को नारायण को समर्पण करदे वह महा-श्रेष्ठ और धन्य है, क्योंकि वह श्वपच भी अपने सब परिवार को संसार सागर से तार सकता है और अधिक अभीमानी और अज्ञानी ब्राह्मण भी आपके चरण कमल से विमुख रहने वाला किसी प्रकार अपने परिवार को पावन और पवित्र नहीं कर सकता, वह धन भी केवल तनका पालन करने वाला है, कुछ मंगल दायक नहीं है। इतनी बातें सुना कर पिता ने बालक से पूछा, "तुम्हारी शंका की निवृत्ति हुई या नहीं" इस पर बालक प्रसन्न होता हुवा बोला, पिता जी! मेरी और तो सब शंका निवृत्त हो गई, एक शंका यह है कि आज कल लोग स्पृश्यास्पृश्य का झगड़ा करते हैं उसमें क्या रहस्य है? किसका मत ठीक है?

पिताजी फिर कहने लगे, "देख! जगत के जितने भी जीव हैं सभी भगवान के अंश है! उनमें कोई भी स्पृश्य या अस्पृश्य नहीं हैं। सभी अपने अपने गुणों से स्पृश्य अस्पृश्य होते हैं। लेकिन व्यवहार में श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा नियत की हुई मर्यादा को नहीं तोड़ना चाहिये। और न वह टूट ही सकती है।

हमारे एक शरीर में कितने ही अंग तो स्पृश्य हैं और कितने अस्पृश्य। एक ही शरीर के अंश होने पर भी उनसे व्यवहार यथोचित ही किया जाता है। यदि इसके विपरीत किया जाय तो बड़ी अव्यवस्था हो जायगी और रहना भी मुश्किल हो जायगा। एक ही शरीर को अंश गुदा और मुख होने पर भी व्यवहार में बड़ा अन्तर है। यदि कोई कहे कि बढ़िया बढ़िया पदार्थों का भोग केवल मुंह करता है यह उसका अन्याय है इसको अकेले को यह सब न देना चाहिये बल्कि सभी अंग इन सबके समान अधिकारी हैं उन्हें बराबर हिस्सा देना चाहिये तो यह होना असंभव है। इसका फल यह होगा कि सब व्यवस्था खराब हो कर शरीर का शीघ्र नाश हो जायगा। इसीतरह सब को अपने अपने नियत कर्म करने चाहियें। इसी में कल्याण है, यदि गुदा कहे कि 'मैं भी शरीर का अंश हूं और सभी भोगों में समानाधिकारी हूं, मैं अकेला क्यों मल स्पर्श करूं, मुझे भी बढ़िया बढ़िया भोजन में हिस्सा मिलना चाहिये तो इसका क्या परिणाम होगा सो तुम्हीं विचार लो। लेकिन साथही अस्पृश्य अंग अशुद्ध है इसको शरीर के साथ ही नहीं रखेंगे ऐसा कहने से भी काम नहीं चलेगा। शरीर सब अंगों को लेकर बनाहुवा है, यदि एक भी अंग कम हो तो शरीर का पूर्ण लाभ न होगा बल्कि इससे दुःख की वृद्धि होगी। इसलिये सभी अंग रहने आवश्यक हैं। किसी से घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये लेकिन व्यवहार यथोचित् रहना चाहिये। जिस तरह सब अंग एकही शरीर के अंश होने पर भी अपने अपने स्थान पर रहते हुये अपना अपना भोग भोगते हैं कोई दूसरे का भोग भोगने की इच्छा नहीं करता लेकिन अपना अपना यथोचित कार्य करते हुये शरीर का सदा स्मरण रखते हैं उसका हित चिंतन करते हैं। इसीलिये शरीर को वे सब प्रिय हैं। यदि कोई व्यवस्था बिगाड़ कर शरीर को हानि पहुंचाने लगे तो शरीर उसे काट कर अलग फेंकने में जराभी संकोच नहीं करता इसी तरह सभी जीव विश्व के अंग हैं। जब विश्व को किसी से हानि होगी तो विश्व उसे काट कर फेंक देगा। इसलिये विश्व के नियमों का पालन करना चाहिये। जो अपने को स्पृश्य और पवित्र समझ कर किसी भी विश्व के अंग को अस्पृश्य और अपवित्र समझ कर उनसे प्रेम न कर उनका नाश करने की इच्छा रखते हैं वे विश्व को हानि पहुंचाते हैं? वे याद रखें विश्व उनका नाश किये बिना कभी न मानेगा। अब तुम समझ गये होगे कि किसका मत ठीक है। जो वास्तविक प्रेमसे दूर रह कर स्वार्थ वश केवल व्यवहार बिगाड़ना चाहता है और जो एक दूसरे से द्वेष कर उसका नाश चाहता है वे दोनों ही गलत मार्ग पर हैं। बल्कि जो व्यवहार को ठीक रखते हुये सब को अपने विश्व का अंग समझ कर, सब से समान प्रेम करता है उसीका मत ठीक है।

पिता के युक्ति युक्त वचन सुन कर बालक के आनन्द का पारावार नहीं रहा। उसने फिर पिता से प्रार्थना की, "पिताजी! एक शंका और है। उसका भी निवारण करने की कृपा कीजिये। वह शंका यह है कि अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश करने में जो झगड़ा है वह क्या है।

पिताजी, बोले, "बेटा! तुम संसार की इतनी बातें अभी कहां से जान गये?

बालक बोला, "पिताजी जब मैं पाठशाला में जाता हूं तब अवकाश के समय पुस्तकालय में जा कर समाचार पत्र पढ़ा करता हूं। उन्हीं में इन सब

द्वन्द्व युद्धों का ब्यौरा देखा करता हूं। मेरे अभी तक इसका अर्थ ठीक समझ में नहीं आया है। आज मैं जब मेरे मित्रों के साथ वन में भ्रमण करने गया तब वहां प्रकृति द्वारा बोये हुये हरे वृक्षों को और उनके खिले हुये सुन्दर पुष्पों और फलों को देख कर मैं उस पर चढ़ गया। वहां एक पक्षी का घोंसला देख कर उसकी कारीगरी पर मुग्ध होगया। और उसके अंदर क्या है यह देखने को आगे बढ़ा जिससे उस पक्षी ने जो मुझे कहा उसको अपमान समझ मेरे क्रोध का ठिकाना न रहा। मैं इसके घोंसले को नाश करने को तैयार होगया। लेकिन मुझे फिर दया आगई कि मेरा झगड़ा पक्षी से है इसके लिये उसके बच्चे को कष्ट देना मुनासिब नहीं। लेकिन उस पक्षी का मैं प. नहीं सकता था इसलिये उसके कथनानुसार वहां से सीधा आपके पास आकर सब हाल निवेदन किया।

अपने पुत्र की न्याय वृत्ति और दया पर पिता गद्गद होगये और कहने लगे कि मंदिरों का झगड़ा भी मूर्खों का काम है। जो भगवत् तत्व को जरा भी जानता है वह कभी ऐसे झगड़े नहीं कर सकता। क्या भगवान् को मंदिर बनाने वाले ने उसमें बांध कर रख लिया है? वे तो सब जगह समान रूप से व्यापक हैं। भगवान् के दर्शनों के इच्छुक को तो कण कण में भगवान् दीखने चाहियें। जो भगवान् को केवल मंदिर में समझ वहीं जाने का आग्रह करते हैं वे नितान्त मूर्ख हैं। और जो भगवान् के निमित्त बनाई हुई इमारत को अपनी समझ उस पर अपना अधिकार रखना चाहता है वह तो मूर्खों का भी मूर्ख है। पिता की संपत्ति पर सब पुत्रों का समान अधिकार है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि सब चीजों को सभी अपनी अपनी समझ कर झगड़ा करें। जैसे एक पिता की कितनी ही प्रकार की सम्पत्ति है। सब पुत्र उन सब पर अपना अपना अधिकार रख कर झगड़ा करें तो उससे उनको कोई अलग अलग चीज लेकर उनको मांगें तो उसमें झगड़े का काम नहीं है। जिसको भगवद्दर्शन की पूर्ण लालसा है और जिसे मंदिर के अन्दर विराजमान भगवान् की मूर्ति में भगवान् के रहने का पूर्ण विश्वास है उसको यदि मंदिर में न प्रवेश करने दिया जाय तो जिधर वह रहेगा उधर ही मंदिर का मुंह घूम कर होजायगा और भगवान् के दर्शन होने लगेंगे जैसे कि भक्तमाल में कई उदाहरण मिलते हैं। और जो केवल झगड़ा बढ़ाने के लिये मंदिर में जाना चाहते हैं उनके मंदिर में जाने से भी किसी को कोई लाभ नहीं। भगवद्दर्शन लालसा वाले को मंदिर में प्रवेश करने से कोई भी रोक नहीं सकता चाहे वह ब्राह्मण हो या चांडाल। झगड़ा करने वाले को एक तुच्छसा व्यक्ति भी धमका सकता है। इसलिये जो झगड़ा करते हैं वे दोनों ही भूले हुये हैं। जो घट घट व्यापी परमात्मा से द्वेष कर केवल परिछिन्न मूर्ति से प्रेम करता है वह कैसे बुद्धिमान् कहा जा सकता है? जो परमात्मा के सब पुत्रों से द्वेष कर केवल उसकी एक मूर्ति से प्रेम करता है उसे परमात्मा कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? क्या पिता, अपनी मूर्ति का आदर करने वाले और घर में विद्रोह करने वाले पुत्र से प्रसन्न हो सकता है? ठीक मन तो उसको समझना चाहिये जो स्वयं अपना कर्तव्य पालन करता है और दूसरों को कर्तव्य पालन में सहायता देता है कर्तव्य क्या है:-

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जे परलोक सुधारा॥

सो परत्र दुःख पावहिं, सिर धुनि धुनि पछिताई।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाई॥
बिनु विश्वास भक्ति नहीं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु स्वप्नेहु मन कि लह विश्राम॥

अस विचारि मति धीर।
तजि कुतर्क संशय सकल॥
भजहू राम रणधीर।
करुणा कर सुंदर सुखद॥

अब तो तुम्हारी समझ में आगया होगा, झगड़ा क्या है। साधक को उचित है कि इन झगड़ों में न पड़ अपने काम से मतलब रखे।

पिता के वचनों से बालक को पूर्ण संतोष होगया और उस दिन से वह भी उन्हीं के उपदेशानुसार अपने कर्तव्य पालन पर डट गया।

एक भक्त के उद्गार।

[ले० एक पागल]

कुण्डलियां

मन भोले! श्री गुरु मिले, उपजा हरि पद नेह।
जो अस्थिर था स्थिर हुआ, त्यागा क्षणिक स्नेह॥
त्यागा क्षणिक स्नेह, दोष ममतादि नशाये।
पिला सुधा उपदेश, मार्ग सच्चे पर लाये॥
जाग मनोहर जाग, त्याग दे कामिनि कंचन।
गुरु चरणन अनुराग, भाग भव से भोले मन॥

शिष्य सेवक जग धन्य हैं, धन्य भक्त पितु मात।
श्री गुरु चरण सरोज रज, जे सेवत दिन रात॥
जे सेवन दिन रात, ईश के चरण सुहाये।
बसते पावन तीर्थ, भोग तज योग लुभाये॥
चेत मनोहर चेत, गुरु शरण है हारक भव।
गुरु सेवी हैं धन्य, धन्य जे सेवत हरि शिव॥

करुणाकर गुरु चरण रज, बन्दों बारम्बार।
बिन सेवत हरि पद मिले, अक्षय सुख दातार॥
अक्षय सुख दातार, शत्रु कामादि न शावें।
नित्य करे तव ध्यान, सर्व दुर्गुण भग जावें॥
पूर्व पुण्य से प्राप्त भये, गुरुदेव कृपाकर।
नित्य 'मनोहर' सेव, दयासागर करुणाकर॥

आया जब से हाथ में 'भक्ति' ग्रन्थ अनूप।
नाशी अविद्या राक्षसी, थी जो जन्मों से भूप॥
थी जो जन्मों से भूप, योनि नाना भटकाया।
बार २ दे कष्ट, अन्ध भव कूप गिराया॥
बारम्बार विचार पढ़ा, तब से सुख पाया।
मिटे 'मनोहर' कष्ट, अन्त माया का आया॥

सुन्दर अद्भुत लेख पढ़, पाई शान्ति अपार।
लगता है ज्यों स्वप्न यह, नाम रूप संसार॥
नाम रूप संसार, जहां है भ्रम की अधिकाई।
फंसे चराचर जीव ध्यान अपना बिसराई॥
शरण मनोहर जाव, देव गुरु शुभ गण मन्दर।
क्षण २ हरी भज राम, ज्ञानमय अद्भुत सुन्दर॥

पूरे कभी न हो सके, भव के सारे काम।
श्री गुरु शरण अनन्य ले, तभी लहे विश्राम॥
तभी लहे विश्राम, छांदि सब जग मर्यादा।
रैन दिवस भज ईश, 'भक्ति' मणि सोवत स्वाधा॥
त्यागो २ शब्द, 'मनोहर' कार्य अन्धेरे।
धावो २ शीघ्र, कार्य जग होय न पूरे॥

प्यारे जब से पी लिया, 'भक्ति अमृत सुख कन्द।
नाशी भव चिन्ता सभी, मस्त सदा आनन्द॥
मस्त सदा आनन्द, राग भय द्वेष हटाये।
शत्रु मार क्रोधादि, घोर अज्ञान भगाये॥
भटक 'मनोहर' नहीं, पहुंच जा गुरु के द्वारे।
स्वासें मत खो व्यर्थ, ईश से मिलजा प्यारे॥

जाते२ बस यही माँगत यह वरदान।
उर में मेरे हरि बसें, जबतक तनु में प्राण॥
जब तब तनु में प्राण, ईश चरणन अनुरागा।
दूना हो दिन रात, हो विषयन वैरागा॥
शेष 'मनोहर' आयु, जाय ईश्वर गुण गाते गाते।
करै सदा गुण गान, बैठते उठते जाते जाते॥

ब्रह्मविद्या

[ले० श्री पं० रेवाधर जी पाण्डेय]

वेत्तिपदार्थानां तत्व स्वरूपंयया सा विद्या तद्विपरीताऽविद्या।

जिससे परमेश्वर की सृष्टि के सब पदार्थों का यथार्थ रूप जाना जाय उसे विद्या कहते हैं और उससे विपरीत अविद्या कहलाती है।

इन्द्रिय दोषात्संस्कारदोषाच्चाऽविद्या।
तद् दुष्टं ज्ञानम् अदुष्टं विद्या॥

इन्द्रियों के दोष से अथवा संस्कार के दोष से अविद्या होती है। वह दुष्ट ज्ञान है। जो निर्दोष इन्द्रिय वा सत्संस्कार से सत्य प्रमाण रूप ज्ञान होता है वह विद्या है। यथार्थ ज्ञान और मिथ्या ज्ञान के भेद से ज्ञान दो प्रकार का है। यथार्थ ज्ञान को विद्या और मिथ्या ज्ञान को अविद्या कहते हैं। इन्द्रियों के दोष वा संस्कार के दोष अविद्या के कारण हैं अर्थात् जो इन्द्रियों में दोष या विकार होने से तथा संस्कार दोष होने से भ्रमरूप मिथ्या ज्ञान होता है वह अविद्या है। यथा, नेत्र में पित्त जन्य दोष होने से शुक्ल रूप का पीत रूप प्रत्यक्ष होना, अति दूरके कारण से यथार्थ प्रत्यक्ष न होना, सीप में चांदी का ज्ञान होना अविद्या है। जिसका कोई कारण नहीं है, जिस में कोई वर्ण नहीं है जिसके नेत्र कर्णादि ज्ञानेन्द्रिय और हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रिय नहीं हैं ऐसा सनातन, विविध विश्व रूप, सर्वव्यापक, परम सूक्ष्म और आकाश आदि पंच-महाभूतों के कारण जिस परम तत्त्व का विवेकी जन अपने स्वरूप से साक्षात्कार करते हैं वह अविनाशी ब्रह्म जिसके द्वारा जाना जाता है वह ही ब्रह्म प्रतिपादक उपनिषद् रूप विद्या, परा विद्या अथवा ब्रह्म विद्या कहलाती है।

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥

ब्रह्मज्ञानी कहते हैं विद्या के दो भेदों को भली भांति समझ लेना चाहिये एक तो परमात्मा विषयक परा विद्या और दूसरी धर्म अधर्म के साधन और उनके फल का वर्णन करने वाली अपरा विद्या।

"तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

उनमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, यह चारों वेद और इनके उच्चारण आदि की विधि

बताने वाली, शिक्षा, यज्ञादि की रीति प्रदर्शक कल्प, वैदिक कोश, निरुक्त, छन्दबोधक पिंगल, ज्योतिष यह वेद के छः अंग अपराविद्या कहाते हैं ! अर्थात् त्रिगुणात्मक संसार का उपदेश करनेवाली अपराविद्या है और ब्रह्म का उपदेश करने वाली परा विद्या है। इसी को ब्रह्म विद्या कहते हैं। यह अनन्त काल के लिए कल्याण करने वाली है इसी को जानने वाले ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं। भूमण्डल के समस्त आस्तिक मनुष्यों का मत है कि, इस दृश्यमान् जगत् की उत्पत्ति एक अनादि अनन्त ईश्वर से हुई है, वही सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, सर्वाधार अनेक रूप से अर्थात ब्रह्मा, विष्णु, शिव होकर इस जगत् का सृष्टि कर्ता तथा स्थिति और प्रलय कर्ता है। कहा भी है:-

यथोर्णं नाभिः सृज्यन्ते गृह्णते च ।
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ॥
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि ।
तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥

जैसे मकड़ी अपने शरीर से जाले के तन्तुओं (धागों) को बाहर निकालती और फिर इन तन्तुओं को अपने ही शरीर में लीन कर लेती है इसी प्रकार परमात्मा अपने स्वरूप में से जगत् को प्रकट करता है और अपनेही में लीन कर लेता है। जैसे एक ही पृथिवी से बीज के भेद करके अनेक वृक्ष, लता आदि उत्पन्न होते हैं ऐसे ही एक ही परब्रह्म से स्व स्व कर्मानुसार अनेक प्रजा उत्पन होती है। जैसे जीवित चेतन पुरुष से केश लोम आदि जड़ पदार्थ उत्पन होते हैं वैसे ही सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से यह जड़ जगत् उत्पन्न होता है।

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते,
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोका कर्मसु चामृतम् ॥

लीन जगत् के विषय में मैं बहुत हो जाऊं ऐसे ज्ञानरूप तप से ब्रह्म वृद्धि को प्राप्त हुआ अर्थात् सृष्टि को उत्पन्न करने का अभीलाषी वा शक्ति के पहिले कार्य से युक्त हुआ फिर उस ब्रह्म से अन्न अर्थात् स्थूल कार्य की ओर उन्मुख होने के कारण कुछ एक प्रकट होने की शक्ति स्वरूप वा जीवन रूप प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ तिससे विराट रूप मन, मन से पंचभूत पंचभूतों से भूआदि लोक और उनमें रहने वाले प्राणियों के कर्म का भोक्तव्य स्वर्ग आदि फल उत्पन्न हुआ उसका क्रम यह है।

'विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डाण्डजगत्सृजेत्' ॥

अर्थात् परमेश्वर की विक्षेप शक्ति (उत्पादिका शक्ति) लिङ्ग शरीर से आदि लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त उत्पन्न करती है।

सा वै एतस्य संद्रष्टु शक्तिः सदऽसदात्मिका ।
मायानाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥

सर्वद्रष्टा जगदीश्वर ने अपनी सत् और असद् रूप माया अर्थात् प्रकृति के द्वारा इस जगत् की उत्पत्ति की। इसी प्रकार सांख्यशास्त्र में भी सत्व रजःतमो रूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही से इस जगत् की सृष्टि निम्न लिखित क्रमानुसार वर्णन की है:-

महदादि क्रमेण पञ्चभूतानाम् ।

अर्थात् महतत्व आदि के क्रम से पञ्चभूतों की उत्पत्ति होकर जगत् की उत्पत्ति होती है।

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥

प्रकृति (अर्थात् सत्वरज तम की समान अवस्था अथवा प्रधान माया, ईश्वरीय शक्ति) से महतत्व अर्थात् अपने से भिन्न समस्त पदार्थों पर व्याप्त होने वाली बुद्धि उत्पन्न हुई) उससे अहंकार

और अहंकार से ११ इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रा और पञ्चतन्मात्राओं से पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश नामक पंचभूत उत्पन्न हुए अर्थात् शब्द की तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न हुआ जिसका शब्द गुण है। शब्द की तन्मात्रा के साथ स्पर्श की तन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ जो शब्द स्पर्श गुण रखता है। इसी प्रकार शब्द और स्पर्श सहित रूप की तन्मात्रा से तेज हुआ जिसमें शब्द स्पर्श रूप गुण हैं। शब्द स्पर्श रूप की तन्मात्रा सहित रस की तन्मात्रा से शब्दस्पर्शरूप रस गुण वाला जल पैदा हुए तथा शब्द स्पर्श रूप रस की तन्मात्रा सहित गन्ध की तन्मात्राओं से पृथ्वी हुई जिसका शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुण है।

इसी प्रकार जो जो इन्द्रियों के विषय हैं वे सब प्रकृति जन्य हैं। अर्थात् ईश्वर की आत्मा स्वरूप होकर प्रकृति को प्रकाश करता है और फिर प्रकृति मूर्ति को धारण कर अनन्त प्रकार के भावों की उत्पत्ति करती है इस संसार में चेतन और अचेतन इन दो पदार्थों में से प्रत्येक पदार्थ की असंख्य श्रेणी हैं और फिर उनके भी असंख्य विभाग हैं, जो कि भिन्न २ अवयव तथा आकारों से रचित हैं। इसी कारण सरसों से लेकर सुमेरु पर्यन्त समस्त पदार्थों में परस्पर रूप, आकार, गुण, वीर्य प्रभाव आदि में भेद है। यदि इनमें भेद करने वाली परमात्मा की चैतन्य शक्ति के अतिरिक्त एक या अनेक जड़ शक्ति की कल्पना की जाय और उनको उनके यन्त्रों को चलाने वाले जड़ इंजिन तथा नाना समय विभाग घड़ी और समीप में रक्खे हुए लोहे को खींचने वाले चुम्बक इत्यादि के दृष्टान्तों से पुष्ट किया जाय तो यही उत्तर होगा कि चैतन्य के संयोग से क्रिया द्वारा उत्पन्न होने वाला परस्पर भेद या आकर्षण जड़ शक्ति से कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता और विचार करने से यह भी मालूम होगा कि भेद करना बुद्धि की वृत्ति का काम है और वह चेतन के आश्रय के बिना किसी जड़ शक्ति में नहीं रह सकती। इसी प्रकार इंजिन, घड़ी तथा चुम्बक बिना किसी चेतन कर्ता के बनाये या चलाये अथवा सम्मुख रक्खे नहीं चल सकती और न खैंच सकती। इसलिए उनके प्रत्येक अणु में ईश्वर का अंश है, वही प्राण रूप है उन में अजर, अमर, सर्व शक्तिमान् परमात्मा ही चेतन सत्ता को डालता है इसी प्रकृति के अंशों से आच्छादित अंश को जीवात्मा कहते हैं।

जीवात्मा वह अलक्षित वस्तु है जिसके निमित्त समस्त पुत्र, कलत्र, मित्र आदि तथा धन, स्थान, देश आदि त्याग दिए जाते हैं। जिसमें अहंता, मेरा मैं, अहम् इत्यादि व्यवहार होता है उस आत्मा का क्या स्वरूप है और वह कैसे जाना जाता है तथा उसके जानने से क्या होता है? इत्यादि प्रश्नों की निवृत्ति शास्त्रों ने इस प्रकार की है।

आत्मा दो प्रकार का है एक जीवात्मा दूसरा परमात्मा जीवात्मा का लक्षण।

'प्राणापान निमेषोन्मेष जीवनमनो गतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि'॥

प्राणवायु, अपानवायु, नेत्र के पलक लगाना व खोलना, जीवन, मन की क्रिया, एक इन्द्रिय को प्रत्यक्ष होने से दूसरी इन्द्रिय में भी वस्तु का स्मरण का होना तथा सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न का होना आत्मा के लिङ्ग हैं अर्थात् शरीर में आत्मा को जानने के लिये कारण (जरिये) हैं। इसी प्राण आदि लिंग वाले आत्मा को वेदान्ती माया से ढका

हुआ परमात्मा का आभास तथा भोक्ता कहते हैं सांख्य और योग अन्तः करण सहित होने से जीवात्मा तथा अन्तःकरण रहित होने से परमात्मा कहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मा देह से पृथक् और नित्य पदार्थ है जिसका देहादि के नाश होने पर भी नाश नहीं होता जैसे कि-अर्जुनके प्रति श्रीकृष्ण जी ने कहा:-

न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजोनित्यः शाश्वतोयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

आत्मा न कभी जन्मता है न कभी मरता है और न इसमें कभी बढ़ती होती है किन्तु यह अज, नित्य, अक्षय, पुरातन है, शरीर का नाश होने पर इस आत्मा का नाश नहीं होता है। पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच, कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन, बुद्धि, इन १७अवयवों से बना शरीर लिंग अथवा सूक्ष्म शरीर कहाता है और इस शरीर से युक्त आत्मा को जीवात्मा कहते हैं सांख्य शास्त्र के मत में १७ चीजों का लिंग शरीर माना है। 'सप्तदशैकं लिंगम्।' अर्थात्-११ इन्द्रिय, ५ तन्मात्रा, व बुद्धि इन १७ वस्तुओं से लिंग शरीर बनता है। इसी लिंग शरीर को (पुरिशेते) स्थूल शरीरमें रहने से पुरुष माना है। यही प्रत्येक में जीव स्वरूप से विद्यमान है। यह आत्मा जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है तब उसे लोक में मृत्युकाल मौत आदि नाम से पुकारते हैं

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा, न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्रों को पहिनता है ऐसे ही आत्मा भी इस पुराने देह को त्याग कर नया देह धारण करता है। इसी लिए वेद, पुराण, इतिहास, आदि आत्मा को देह से पृथक् वस्तु प्रतिपादन करते हैं। कोई आत्मा को शरीर में व्यापक मानते हैं, कोई व्यापक मान कर दीपक के दृष्टान्त से सम्पूर्ण शरीर में प्रकाश कर्ता कहते हैं। वे इस प्रकार आत्मा को शरीर से अतिरिक्त सिद्ध करते हैं जैसे बाह्य जगत् के समस्त कार्य सूर्य आदि के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं इसी प्रकार अन्तर्जगत् के सम्पूर्ण कार्य आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, मनुष्य की स्वप्नावस्था इस बातको सिद्ध करता है, कि कोई शरीर के भीतर विलक्षण प्रकाशक है जिसके द्वारा मन, बिना भी सूर्य आदि के प्रकाश के सम्पूर्ण वस्तुओं का अनुभव करता है। यदि कोई कहे कि मन की उत्पत्ति सूक्ष्मतर प्रकाश युक्त, पञ्चतन्मात्राओं के कार्य पञ्चभूतों से होने के कारण मन में भौतिक ही प्रकाश है, आत्मिक नहीं, तो जिस सुषुप्तिदशा में मन की क्रिया भी लीन हो जाती है उसके अनन्तर "सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषम्" मैं सुख से सोया मैंने कुछ नहीं जाना इत्यादि सुख को अनुभव करने वाला तथा साक्षी कौन है ? उस सुषुप्ति अवस्था में किस ने देखा कि यह सुख से सोया और किस के द्वारा देखा तथा किसके प्रकाश में देखा इत्यादि अनेक तर्कानुतर्क के पश्चात् यही सिद्ध होगा कि वह प्रकाश चैतन्य स्वरूप आत्मा का ही है, इसी सिद्धान्त की पुष्टि में महात्मा कपिल उपदेश देते हैं "जड़ प्रकाश योगात् प्रकाशः" जड़ में प्रकाश न होने से आत्मा ही सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप है अर्थात् वह प्रकाश आत्मा ही का है। वह सुषुप्ति अवस्था आदि का साक्षी है। कहा भी है "सुषुप्त्याद साक्षित्वम्" आत्मा सुषुप्ति का आदि साक्षी है। अर्थात् द्रष्टा है, वह स्वयं अपने प्रकाश में आप देखता है उसको सूर्य के प्रकाश के समान अन्य

के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। उसी के प्रकाश से संसार प्रकाशित होरहा है भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं:-

नतद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

जिसको सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते और जिसके शुद्ध आत्मा स्वरूप का प्राप्त हो संसार में लौट कर नहीं आते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं, वह मेरा उत्तम धाम है, जैसे किसी राज-सभा में दीपक जल रहा है और मंत्री सरदार दरबारियों सहित बैठे हुए राजा के सामने, नटी साजिन्दों से मेल में बजाये हुए बाजों के साथ नृत्य कर रही हो तो उस उत्तम या अनुत्तम गाने का सुख दुःख राजा ही को होता है और दीपक के प्रकाश को किसी प्रकार का सुख या दुःख नहीं होता, केवल वह दीपक का प्रकाश राजाके सुख दुःखका साक्षी है स्वयं सुख दुःखसे असंग है। इसी प्रकार शरीर रूप महल में दीपक से असंख्य गुण प्रकाश वाले आत्माका प्रकाश होरहा है। मन और चित्त रूप मन्त्री तथा दरबारियों सहित बैठे हुए अहंकार रूप राजा के सामने बुद्धिरूप नटी इन्द्रिय रूप साजिन्दों से शास्त्रानुकूल आचरण रूप मेल में बजाये विषय रूप बाजों के साथ नृत्य कर रही हैं, परन्तु उस बुद्धि के उत्तम अनुत्तम विषय भोग रूप सुख दुःख भौतिक प्रकाश के समान चेतन आत्मा को किञ्चिन्मात्र भी स्वाभाविक नहीं है। कहा भी है:- 'असङ्गोयं पुरुषः' यह आत्मा असंग है। इत्यादि प्रमाणों से आत्मा को देह से अतिरिक्त सबही मानते आये हैं। क्योंकि यदि आत्मा देह से भिन्न न होता तो कदापि देह वा इन्द्रियों के रहते जीव की मृत्यु नहीं होती अर्थात् देह के किञ्चिन्मात्र शेष रहने पर भी मनुष्य में सब प्रकार की क्रिया होती रहती है और जो आत्मा पञ्चभौतिक संयोग से उत्पन्न कोई विलक्षण शक्ति स्वरूप होता तो क्या मरण के बाद पाञ्चभौतिक संयोग नहीं है जो उस अवस्था में क्रिया नहीं होती अथवा साइन्स विद्या के विद्वान् अन्य पदार्थों के समान शरीर के सब पदार्थों को अलग अलग करके जीवात्मा की उत्पत्ति क्यों नहीं कर सकते। अर्थात् जड़ पञ्चभूतों से चेतन आत्मा कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसलिए आत्मा और प्रकृति ही आदि द्वैत वस्तु हैं दोनों परस्पर विपरीत हैं, आत्मा ज्ञाता (जानने वाला) और प्रकृति ज्ञेय (जानने योग्य) है, इन दोनों ने परस्पर एक दूसरे की सहायता से इस अखिल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया है। इस प्रकार पूर्णरूप से सच्चिदानन्द परमात्मा का जानना ब्रह्मविद्या कहाती है, इसी का समस्त उपनिषद् ब्रह्मसूत्र, सांख्यशास्त्र, गीता, योगवासिष्ठ आदि विशेष रूपसे प्रतिपादन कर रहे हैं, यह श्रद्धालु मनुष्य को शास्त्र के नियमानुसार श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने से प्राप्त होती है।

वियोग-व्यथा

[ले० श्रीपति जी]

चूक अब रोये चुकत न नाथ;
आपनि ओरि कहँ हम कासन नि बिगरी निज हाथ।
अवसर गयो, गई वे बातैं, छुटयो नेह वह नात;
को जानै, मानै, मो मन की मनहीं माहिं सिरात।
बिसरति सुरति न निसरति छवि वह, मुरति नहिं बिहात;
चौंकि परत सोवत, पुनि जागत, सिर धुनि धुनि पछितात।
देहु दरस मुरलीधर मोहन, अधिक न अब सहि जात;
दीन मीन इव ये दृग दोऊ, देखन कह अकुलात ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

शब्दार्थ—मेरे मंत्र का जाप, मुझ में दृढ़ विश्वास और मेरा भजन करना यह पांचवी भक्ति वेदों में प्रकट है।

प्रथम मम शब्द के तात्पर्य को जानना चाहिये जिसको जान कर उसमें दृढ़ विश्वास हो और उसके मंत्र का जाप व भजन बन सके जो वेदों में वर्णित है।

"सभूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्"।

वह परमेश्वर सम्पूर्ण विश्व में परिपूर्ण रूप से भरकर और भी दश अंगुल शेष रहता है।

विष्णु कोटि प्रतीपालं, ब्रह्मकोटि विसर्जनम्।
रुद्र कोटि प्रमर्दं वै मातृ कोटि विनाशनम्॥
भैरव कोटि संहारं मृत्यु कोटि विभक्षणम्।
यमकोटि दुराधर्षं काल कोटि प्रधानकम्॥
सर्व सौभाग्यनिलयं सर्वानंदैकदायकम्।
कौशल्यानंदनं रामं केवलं भवखंडनम्॥

इसका भाव प्रायः तुलसीदासजी की चौपाइयों से मिलता है।

विष्णु कोटि शत पालन कर्ता। रुद्रकोटि शतसमसंहर्ता।
शारद कोटि अमित चतुराई। विधिशत कोटि सृष्टि निपुणाई॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा।
सिन्धु कोटि शत सम गंभीरा॥
काम धेनु शत कोटि समाना।
सकल काम दायक भगवाना॥
प्रभु अगाध शत कोटि पताला।
शमन कोटि शत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि शत पावन।
नाम अखिल अघपुंज नशावन॥

निरुपमन उपमा आन राम समान निगमागम कहै।
राम अमित गुण सागर, थाह कि पावइ कोइ।

उपरोक्त कथन से यह अभिप्राय है कि जिस परमेश्वर के रोम रोम पर अगणित ब्रह्मांड विराजमान हैं, उसकी महिमा को कोटान कोट दृष्टि गोचर पदार्थों से तुलना करना बहुत ही अयोग्य होता है तथापि बुद्धिमान् लोग कुछ अनुमान कर सक्ते हैं।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं।
तथाऽरसंनित्यमगंधवच्चयत्॥
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं।
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥

जो शब्द रहित है स्पर्श रहित है, रूप रहित, अविनाशी है, और रस रहित है, नित्य है, गन्ध रहित है, और आदि रहित है, अन्त रहित है, महतत्व से परे है, अचल है, तिसको जानकर के पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

मयाततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मुझ (अव्यक्त मूर्तिना) यानी (व्यक्त मूर्ति) नहीं है स्वरूप जिसका ऐसी अव्यक्त मूर्ति से सर्व यह जगत् ततं नाम व्याप्त है जो सब से परे है तिससे (मया) अव्यक्त मूर्ति स्वरूप इन्द्रियोंका विषय नहीं है।

तुलसीदास जी ने भी राम के स्वरूप का वर्णन

किया है ।

बिनुपद चलै सुनै बिनुकाना । कर बिनु कर्म करै विधिनाना ।

भावलभ्य भगवान् सुख निधान करुणा भवन ।
तजि ममता मदमान, भजिय सदा सीता रमन ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥

किस कारण से, मैं कहता हूं इस आशय से भगवान कहते हैं हे अर्जुन ! जिससे देव गण और भृगु आदि महर्षि लोग ये कोई मेरे प्रभाव को अर्थात् मेरी शक्ति के उत्कर्ष को नहीं जानते हैं अथवा प्रभव जो मेरी उत्पत्ति तिस को नहीं जानते हैं क्योंकि जिससे मैं देवताओं का और भृगु आदि महर्षियों का सब प्रकार से आदि कारण हूं, इस से मैं ही अपना प्रभाव तुम से कहता हूं । किंच उत्पत्ति तो मेरी है ही नहीं इस आशय से भगवान् कहते हैं ।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ॥

हे अर्जुन ! जिससे मैं ही सब देवों का और महर्षियों का आदि कारण हूं इससे मेरा कोई आदि यानी उत्पत्ति कारण नहीं है इसीसे मैं अनादि कहलाता हूं, इसी से मैं अज हूं अर्थात् जो उत्पन्न नहीं हो उसको अज कहते हैं अज, अनादि और सब लोकों का महेश्वर बड़ा भारी मालिक जिसका कोई दूसरा मालिक न हो, इस प्रकार पुरुष मुझको जानता है सो सब मनुष्यों में मोह रहित है अर्थात् विद्वान् है और इस प्रकार जानने से वह सब पापों से अर्थात् जानके और बिना जाने किये जो पाप तिन से छूट जाता है ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

हे अर्जुन ! हे शुक्लान्तरात्म स्वभाव नाम विशुद्धान्तः करण अर्थात् अर्जुन शब्द शुक्ल अर्थका वाचक है.

शुद्ध अंतःकरण युक्त ईश्वर जो सब का प्रेरक नारायण सो सब के हृदय रूप देश में स्थित है इस आकांक्षा में कहते हैं कि जैसे काठ पुतलिया को नचाने वाला पुरुष किसी एकांत देश में स्थित होके तार में बँधी हुई पुतलियों को नचाता है इसी प्रकार माया द्वारा सब प्राणियों को भ्रमण कराते हुए के समान सब के हृदय में स्थित हो रहा है ।

"दहर उत्तरेभ्यः" इस व्यास सूत्र के शांकर भाष्य से और श्रुति के उत्तर वाक्य शेष के विषय में कारण होने से भूताकाश और जीव दहराकाश नहीं हैं किंतु दहराकाश परमात्मा है श्रुति "दहरोऽस्मिन अन्तराकाश" हृदयाकाश में विशेषता से परमात्मा की उपलब्धि होती है इससे हृदयदेश को ही भगवान् ने कथन किया है वैसे तो बाहर भीतर ऊपर नीचे इत्यादि यानी सर्वत्र ठसाठस भरा हुआ है उसके बिना सरसों भरभी ठौर खाली नहीं है ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत भरतवंशोद्भव अर्जुन ! सब का आश्रय नारायण तिसको सर्वभाव करके सर्वात्मभाव से अथवा मन कर्म वचन करके शरण को प्राप्त हो अर्थात् नारायण ही सब का आश्रय है यह जान के उससे पृथक् अपने पुरुषार्थादिकों का भरोसा छोड़ के उस परमेश्वर के प्रसाद से अर्थात् अनुग्रह से परम उत्कृष्ट जो शान्ति अर्थात् सब दुःखों से निवृत्ति और शाश्वत नित्य जो स्थान अर्थात् मैं जो विष्णु तिसका परम पद तिसको प्राप्त होगा ।

मंत्र + अच । गुप्तभाषण । जाप = जपधत्र + प्रत्यय । चुपचाप मन ही की प्रार्थना अर्थात् जप ।

जो उपरोक्त मम शब्द का अर्थ है उसीके समस्त नाम यानी राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, खुदा और ईशु आदि हैं । नाम से वस्तु में भेद नहीं हो सकता वस्तु एक ही है नाम अनेक हैं, इतिहास पुराणों से सिद्ध होता है कि जिसको जिस नाम से प्रेम हुआ और उसी को उसने जपा, उसी से उसको सिद्धि हुई यह बात सर्व आस्तिक पुरुषों को ज्ञात है । यदि कोई पक्षपात करे तो करो, तत्व तो एक ही है । कहा भी है

प्रभु मेरी सांचि मन को मीता ।
कब शिवरी काशी में जाकर कब पढ़िआई गीता ।
ताके बेर विश्वंभर खाये चाखि २ मन चीता ॥

जब अपने २ इष्ट को सब ही सर्वव्यापी कहते हैं और यह सच ही है तो दूसरे से द्वेष करना, तब सर्व व्यापकता कैसे घटेगी । यहतो अपने इष्ट को ही दूषित करना हुआ, अथवा सर्व शक्तिमान् अपने २ इष्ट को सभी मानते हैं और दूसरे में उसकी शक्ति नहीं मानना तो सर्व शब्द को संकुचितता आजावेगी। इसलिये तुलसीदास जी का बचन सार्थक है "सीय-राममय सब जगजानी' ऐसा विचारकर कि सर्व नाम ईश्वर के ही हैं जिसमें अपना प्रेम हो दृढ़ विश्वास कर के अनुष्ठान में लग जाना चाहिये और सब बातों को कुतर्क जान कर मृगतृष्णा के समान त्याग देना चाहिये ।

भज् = सेवायां धातु से भजन शब्द बना है, भजन का प्रकार वेदों में वर्णित है । तापनीय उपनिषद् में निष्काम उपासना से मुक्ति कही गई है और प्रश्नोपनिषद् में सकाम से मनुष्य को ब्रह्मलोक मिलना कहा है और जो मनुष्य तीन मात्रा वाले ॐकार से उपासना करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, फिर वह वहां परम पुरुष को प्राप्त होता है । बादरायण ने निर्गुण उपासना के अधिकरण में जैसा यज्ञ वैसा फल यह न्याय कहा है । इस से सकाम मनुष्य का ब्रह्मलोक रूप फल ऐसा वर्णन किया वह सिद्ध हुआ। ॐकार की उपासनायें प्रायः निर्गुण ही वेद में हैं और कहीं ॐकार की उपासना का सगुण पक्ष भी कहा है। पिप्पलाद मुनिने सत्यकाम के लिये उसके पूछने पर पर और अपर रूपों का वर्णन किया है । यम ने नचिकेता के लिये उसके पूछने पर दोनों प्रकार के आश्रय को जान कर जो जिस की इच्छा करता है उसको वह ही प्राप्त होता है । विचार में असमर्थ मनुष्य सदैव परमात्मा की उपासना करे और यही अर्थ आत्म गीता में भी साफ़ २ कहा है ।

साक्षात्कर्तुमशक्तोऽपि चिंतयेन्मामशंकितः ।
कालेनानुभवा रूढो भवेयं फलितो ध्रुवम् ॥

साक्षात्कार करने को असमर्थ मनुष्य संशय रहित होकर मेरा स्मरण करे तो काल पा करके यानी समय से अनुभव में आकर निश्चय 'मैं 'फलित होता हूं । सगुण उपासना से निर्गुण उपासना श्रेष्ठ है । परमात्मा सगुण निर्गुण दोनों से परे है इसलिये सगुण उपासना भी क्रमशः निर्गुण होकर फिर असंग परमात्मा को विषय करने लगती है । चतुर्भुजादि किसी रूप की कल्पना करना सगुण उपासना है । आनंद, विज्ञान, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सत्य, मुक्त, निरंजन, विभु, अद्वय, पर, प्रत्यगात्मा, एक रस आदिक विधेय गुण हैं और जो न स्थूल है, न अणु है, न छोटा है, न देखने योग्य है, न ग्रहण करने योग्य है, न छूने योग्य है, न रूप है, न बिनाशी है आदिक निषेध्य गुण हैं ।

नाम रूप के बिना निराकार की कल्पना निर्गुण उपासना है निर्गुण में विधेय और निषेध्य दोनों प्रकार के गुण नहीं है, किंतु इन से निर्गुण तत्व को लक्षित किया जाता है, इसलिये ये गुण लक्षक मात्र से कल्पित हैं। विधेय और निषेध्य गुणों से लक्षित 'वह निर्गुण ब्रह्म मैं हूं' ऐसा ध्यान तब तक करना चाहिये जब तक अपने में ध्यातापनका अहंकार यानी अभिमान विद्यमान रहे, फिर ध्यातापन का अभिमान दूर हो जाने पर मरण पर्यंत ध्याता, ध्यान, ध्येय में एकाकार आत्म भावना की धारणा करनी चाहिये। जब इस भांति से धीरे धीरे उपासना परिपक्व हो जाती है तब पहिले सविकल्प समाधि होती है फिर वही निर्विकल्प समाधि होजाती है, तब उपासक के हृदय में अनायास असंग रूप ब्रह्म भाव उत्पन्न होता है। और 'तत्वमसि आदि' महावाक्यों से शीघ्रही आत्माराम का अपरोक्षपन भासित होने लगता है। जब कि ध्यान में इतना बल है कि जो वस्तु सामने नहीं है वह भी ध्यान से तदाकार मालूम होने लगती है तब सत्यता से स्थित परमात्मा क्यों न भासित होगा? इसलिये उपासकको चाहिये कि जैसे कुदाल के द्वारा खोद कर कान से रत्न निकाल लिये जाते हैं इसी प्रकार बुद्धि से देह को हटाकर परमात्मा राम, कृष्ण, विष्णु आदि का ध्यान करे। जब देह आदि में अहंपन का अभिमान दूर होकर अपने इष्ट में ही ध्यान आता है अथवा इष्ट ही ध्यान में आता है तब ध्यान करने वाला स्वयं इष्ट रूप हो जाता है।

सौंदर्य

(लेखक—मदन गोपाल सिंहल)

अस्थिर क्यों होता है मन? चारों ओर दौड़ा दौड़ा कहां फिरता है? संसार में कुछ भी नहीं है मूर्ख, फिर किस की चाहना करता है? सब धोका है, छाया के समान है, स्वप्न की भांति है फिर इसमें क्यों भूला है मूर्ख मन! सत्य को छोड़ कर इस असत्य अनित्य में क्यों मुग्ध हो गया है? क्या सौंदर्य की ओर आकर्षित होता है? परन्तु अभागे! सौंदर्य कहते हैं किसे कुछ इसका भी ज्ञान है! जानता है सुन्दरता वस्तु क्या है? विचार तो, क्या संसार के नर नारियों में सौंदर्य है? क्या सचमुच ही वे सुन्दर हैं? मूर्ख! इनमें सौंदर्य कहां? केवल तेरी वासना ही उनको रूप गरिमा विशेष कर देती है। इनमें वास्तविक सौंदर्य है ही नहीं।

रे मन! जिसके नेत्रों पर हरा चश्मा होता है उसे सभी वस्तु हरी हरी प्रतीत होती हैं परन्तु जिस की आखों पर किसी भी रंग का चश्मा नहीं है उसे वही वस्तु हरी प्रतीत होती है जो वास्तव में हरी है। इसी प्रकार इस समय तेरे नयनों पर काम क्रोध इत्यादि अनेक रंगों से रंगा हुवा वासना रूपी चश्मा चढ़ा हुवा है इसीलिये तुझे जगत् के प्राणियों में सुन्दरता प्रतीत होती है। यदि तुझे सौंदर्य की खोज है तो अपने नेत्रों से इस वासना रूपी चश्में को उतार डाल

और फिर संसार की ओर दृष्टि उठा। देख कौन कौन सुन्दर है, किस के अन्दर सौंदर्य है और किस के अन्दर नहीं। मेरे विचार में उस समय तुझे स्वर्ग लोक की रूपवती अप्सराओं में, मनुष्य लोक की सुन्दरियों में और गदंभी में कुछ भी भिन्नता प्रतीत नहीं होगी। हां! तुझे उस समय एक सौंदर्य अवश्य दृष्टि गोचर होगा और वही सच्चा सौंदर्य होगा।

वह सौंदर्य होगा ऐसा जिसको अनेकों ने, अनेक प्रकार से, अनेक बार देखा परन्तु किसी की तृप्ती उसे देखने से न हुई, किसी का मन उसे देखते न अघाया। उसे ध्रुव ने देखा, प्रह्लाद ने देखा, ब्रज के गोप गोपियों ने देखा, ग्वाल बालों ने देखा और न जाने कितनों ने देखा पर जिसने देखा उसने बढ़ते ही पाया, उसमें कभी कमी न आई।

रे अभागे मन! ऐसे सौंदर्य को त्याग और किस की ओर दौड़ता है! और सारे सौंदर्य दिन दिन क्षीण होने वाले हैं परन्तु वह सौंदर्य दिन प्रति दिन बढ़ने वाला है। बस, यदि सौंदर्योपासक बनना चाहता है तो उसी सुन्दरता को अपने हृदय में बैठा, उसी सुन्दर स्वरूप की पूजा कर और उसी पर अपना सर्वस्व चढ़ादे।

प्रेमियों का प्रेम प्रलाप।

[ले० श्री दुर्गाप्रसाद जी गुप्ता]

प्रेमी भक्त-अनन्यभक्त-भगवान् के भक्ति भाव में डूब कर गर्व से-"हिरदय में से जाहुगो तो मर्द बखानूं तोहि" कहने वाला भक्त, जब भगवान् की स्तुति करते करते थक जाता है, खुशामद करने से काम बनता हुवा नहीं देखता, तब भगवान् को उल्टी सीधी सुना कर जोश दिलाना चाहता है, कई भक्तों ने भगवान् को खूब आड़े हाथों लिया है। पेट भर कर कोसा है, भगवान् बुरा न माने तो हम पाठकों को कुछ बानगी दिखायें। क्योंकि गाली दुहराना भी तो गाली देना है।

बुरा मानने की बात नहीं है महाराज! कुसूर माफ़ हो, आप उन "अपनों" को क्यों नहीं बरजते जो आपकी जात में ऐसी खोटी खरी सुनाते हुये तनक भी नहीं हिचकते।

भक्त शिरोमणि सूरदास जी अपने सांवलिया की खूब खुशामद कर चुके हैं। "चन्द्रखिलोना" और "माखन रोटी" के गीत गा गा कर बहला चुके हैं। परन्तु वह "चालाक-चोर" काबू में ही नहीं आता, कुछ सुनता ही नहीं, निदान हार कर कहना पड़ा, पोल खोलनी पड़ी।

किन तेरो गोविंद नाम धरयो ॥ टेक ॥
लेन देन के तुम हितकारी मोतें कछु ना सरयो।

विप्र सुदामा कियो अजाचक तंदुल भेंट धरयो ॥
द्रुपद सुता की तुम पत राखी अम्बर दान करयो ।
सांदीपन के तुम सुत लाये विद्या-पाठ पढ़यो ॥
सूर की बिरयां निठुर होय बैठे काननमूंद धरयो ॥

हमने तो आज तक तेरा नाम "चोर" ही सुना था परन्तु तू तो पक्का रिशवत खोर ही निकला, बड़ा मतलबी यार है। जो कोई कुछ देता है उसकी सुनते हो, मैं कुछ दे नहीं सका, फिर मेरी क्यों सुनने लगे हो ?

कंगाल-सुदामा से चावल भेंट में लेकर उसको कुछ दिया था। मुफ्त में "अयाचक" नहीं बनादिया था, द्रौपदी विचारी से पहिले कपड़ा ले चुके थे, तब दिया था-अपना ऋण चुकाया था, इस में कुछ अहसान नहीं है। सांदी पन गुरु के बेटे तब लाये थे जब कि पहिले उनसे विद्यादान लेचुके थे। हर जगह अपना मतलब पहिले सिद्ध कर लिया है।

एक मैं आपको ऐसा मिला जो आपका कुछ काम कर नहीं सका अपने मुझको "मुफ्तखोर" समझ कर झटसे कान मूंद लिए। क्यों पाठक ? कैसा गजब का ताना, यह है सख्य-भाव की पराकाष्ठा।

× × ×

सुदामा जी मित्र से मिलाप कर के लौटते हैं। घर के समीप आकर देखते हैं झौंपड़ी का पता नहीं है। झट समझ जाते हैं यह उसी नट-खट" की चाल है, मुझे कुछ दिया सो तो देखा, उल्टे मेरी झौंपड़ी और लूटकर ली। झट कह उठे—

छाछ को पिवैया गैया घेरत हो बन घर,
छाछ ही के काजे एक माट फोर डारयो है ॥
खायबे के काजे पूजा इन्द्र की मिठाई लई,
कोप्यो जब इन्द्र गिरि सात दिन धारयो है ॥
बिदुर के घर जाय छिलका चबायो साग,
द्रौपदी को खायो भीलनी दे फल डारयो है ॥
द्रौपदी को चीर दियो गोपिन को छीन लिए,
माहते बचायो गज रंग भूमि मारयो है ॥

वाहरे यार कन्हैया! अच्छा जोड़तोड़ मिलाता है। घर से एक दमड़ी खर्च नहीं करता यदि मिल जाये तो हजम करने में चूकता नहीं। विचारे ब्रजबासियों को बहका कर इन्द्र पूजा की मिठाई गिरिराज का बहाना करके आप खा गया और जब इन्द्र ने मूसलाधार का प्रहार किया तो उस प्रहार को सहने के लिए गिरिराज को आगे कर दिया। विदुर के घर कुछ ना मिला तो केले के छिलके ही जाकर खाने बैठ गया, बन बासिनी विचारी द्रौपदी का साग भी पूंछ पांछ कर खागया। और तो और जंगल में जब कहीं भोजन की जुगत नहीं लगी तब भीलनी के ही डेरा जा लगाया। अच्छा हुवा उसने बेर देकर ही टाल दिया, नहीं तो और कुछ ठगा जाती, तुम्हारा क्या भरोसा है! लोग कहते हैं कि तुमने द्रौपदी को चीर दिये थे। परन्तु इस बात को कोई नहीं कहता कि इन्होंने गोपियों के कितने चीर चोरे थे। उन चोरे हुवों में से दो चार दे भी दिये तो क्या बड़ी बात कर दी। भला उसका ऋण कैसे नहीं चुकाते। सुना गया है कि आप ने ग्राह के पंजे से गज को छुड़ाया था, पर कंस के अखाड़े में कुवलिया पीड़ "हाथी भी तो सरकार" ने ही मार गिराया था। यह है लंगोटिया यारों के ताने, और सुनिये:-

भक्त माधवदास जी भी जब आर्तनाद करके थक गये, तो अन्त में कह उठे।

टेरत हूं प्रात रात पूछी नहीं मेरी बात।
जानी हम तात भृगु लात के खवैया हो ॥

हे तात ! पुकारने से कुछ लाभ नहीं मेरी पुकार तुमने नहीं सुनी हमने जान लिया तुम तो लात खाकर ही मानते हो। लात खाने वाले हो, भृगु ने लात मारी, झट हाथ जोड़ कर आधीन बन गये। जबरदस्त का जमाना है।

प्रेम का दर्जा कितना ऊंचा है ? किसी तरह पर भी न मानने पर लात का चलहना नहीं, नहीं, धमकी दी जारही है। तभी तो कहा है:-

"राम से अधिक राम कर दासा"

× × ×

पाठक सख्य भाव के नमूने देख चुके। तनक दास्य भाव वालों की भी कारीगरी देख लीजिये !

देखिये गुसाईं तुलसीदास जी कैसे चुपके चुपके भोले भाले "राम जी" को बहलाना चाहते हैं।

तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल "तुलसीदास मेरो" ॥

महाराज रामलाल जी ! तुम गरीब निवाज़ हो, मैं गरीब हूं देखा कैसी अच्छी विधि मिल गई है बस एक बार अपने मुंह से यह कहदो "तुलसीदास मेरा है"

वाह ! गुसांई जी गज़ब कर दिया ! कितनी बारीक बात कह गये। बालक को बहकाना चाहते हो। सदा के लिये रजिस्टर्ड होने की तरकीब निकाली है। रसीदभी हाथों हाथ मांगातेहो कि एक बार कहो 'तुलसीदास मेरा' फिर निर्भय हो जावोगे।

अहा ! कितना मार्मिक पदहै:-

"बारक कहिये,कृपाल तुलसीदास मेरो"

× × ×

भक्तों ने भगवान् को कितना भोला समझ लिया है। एक भक्त कह रहा है। महाराज ! जिस समय मैं मरूं तब मेरे मुंह से आपका नाम निकले आप का दर्शन हो, परन्तु, देखना ! इस बातका ध्यान रखना:-

"इस पापी मेरे तन को प्रभु हाथ मत लगाना।
चरणों की ठोकरों से सरजू में फेंक जाना" ॥

पाठक समझ गये होंगे इस बारीकी को। भक्त की चतुरता सराहने योग्य है।

'जेही पद सुर सरिता, परम पुनीता प्रगटभई शिवशीश धरी'

चरणों की ठोकर चाहता है। अच्छा भगवान् तो ठोकरें शायद मारभी दें शायद इसलिए कि अपने भक्त के ठोकर मारने में वह भक्त का निरादर समझ कर हिचक जायें परन्तु फिर तो नहीं कहोगे कि मेरा अपवित्र शरीर है।

× × ×

महराज ! हमें तो कुछ कहना सुनना आता नहीं, भक्तों ने तो खोटी खरी बातें सुना कर आपको रिझा लिया। हम क्या करें ? बस एक बार आकर यही बता जावो फिर चाहे रूठ जाना।

दुःखी भक्त

[ले० श्री वैकुण्ठनाथ विद्यार्थी]

प्यारे श्याम ! क्या आप सचमुच ही निर्दयी हैं ? क्या आप का इतना ही पाषाण सम हृदय है कि

इसमें नाम मात्र भी दया नहीं ? क्या अब वह दुःखी भक्त दृष्टि गोचर नहीं होते जिन की टेर श्रवण कर आप धर्म हानि देख अवतरित होते थे ? नहीं भगवन! सब कुछ है परन्तु आप ही रूठे हुए हैं !

क्या यह वही पुण्य स्थली नहीं जहां पर्दापण करके आपने निज नाम की लाज रक्खी ? और गीता के उपदेष्टा बन कर महाभारत के युद्ध में अग्रगण्य हुए ! क्या यह वही देश नहीं जहां आपने राधा संग रासरच कर, उद्धव जी को भक्ति देकर और गोपियों को विरह की अग्नि में जला कर दुष्ट कंसका हनन किया ? अशरण शरण ! आपतो सब कुछ भुला बैठे निज लीला स्मरण करो और कपटी तथा ठग नाम न धराओ ।

सांवरे ! क्या आप को वही पीताम्बर की अभिलाशा तो नहीं जिसको ओढ कर गोपियों को घन के गरजते २ और दामिनी के दमकते २ नन्हीं २ बून्दों की वर्षा में हिंडोलो में रिझाया और राधावल्लभ तथा गोपेश्वर नाम धाराया। भगवान ! एक समय पधारें। आपके सुन्दर शरीर को दीनबन्धु हृदय की ओढनी बना कर छिपा लूंगा। फिर तो दीनानाथ ! हमें सखिया ही समझ कर रास रचा लेना, हिंडोले झूलना ।

भगवन ! अब भी तो इन्द्र के प्रलय मेघ वर्षा कर रहे हैं और साम्प्रति आपकी आवश्यकता है कि आकर गोवर्धन पर्वत धारण करें और दुखी भक्तों की टेर सुनें । यदि हमारी विनती हे नाथ ! न सुनोगे तो भगवन् ! आपको लोग प्रयोजन सिद्ध करने वाले कहेंगे । क्योंकि ब्रज वासियों से माखन भक्षण कर उनके ही रक्षक बने । पतित पावन ! माखन तो अबभी है किन्तु कोई माखन चोर नहीं जो इसको चुराये ।

दीनानाथ ! आपकी लटक चालकी बाट जोहते २ नैनों ने साहस तज दिया । जिह्वा भी महिमा गायन करती २ थक गई परन्तु आपके हृदय में दया न आई ।

हां अब समझा ! आपको तो संसार वृथा ही भक्ति दाता कहता है ।वास्तव में आप दानी नहीं आप तो सदा के कोरे हैं ।। राधावल्लभ ! क्या सत्य ही आपने द्रौपदी का चीर सभा में नग्न होते हुये बढ़ाया। नहीं, कृपा सागर ! जो वस्त्र हरण लीला करके गोपियों के चीर चुराये वही नाथ ! द्रौपदी को दान दिये ।

हे नाथ ! गजेन्द्र को भी भक्ति तब ही दीन्हीं जो कंसके उन्मत्त हस्तियों के प्राण हरे । भगवन ! किसी व्यक्ति को अनुसंधान करो और भक्ति हीन न रक्खो ।

आच्छा दीनबन्धु ! कृपा सागर ! भक्त वत्सल ! दया निधान ! गोपाल ! माखन चोर ! गिरधारी ! मदनमोहन ! अशरण शरण ! यह निठुराई कबतक ? मौन भावकी भी कोई सीमा होनी चाहिये परन्तु आप तो ऐसे निष्ठुर होगये कि निज प्रतिज्ञा पंक्तियां स्मरण करते हुए भी इस दासकी तुच्छ प्रार्थना स्वीकार नहीं करते । भगवन् । जैसा आपका नाम है वैसा ही आप का हृदय काला और कठोर है । हे सांवरे ! और नहीं तो यह बतलाइये कि इस रूठने का कारण क्या ? जिससे मैं कोई उपाय कर लूं ।

हे राधावर ! आप को तो शेष-महेश-जोगी-तपस्वी और ब्रह्मा त्रिलोचनादि निरन्तर गाते हैं और आपकी महिमा का पार नहीं पाते परन्तु आश्चर्य्य है कि आपको उन अहीर की लड़कियों ने छछिया भरि छाछ पर नाच नचाया , हे जगत पिता ! पय्यां लागूं ! सखी भाव से यह प्रार्थना करता हुं, हे श्याम ! छाछ लाने

के लिये मैं प्रस्तुत हूं किन्तु आप मुझे उन गोपियों में एक जानना

हे गोपाल ! मैं फिर यह बिन्ती करता हूं नाथ! इस छोटी सी प्रार्थना को स्वीकार करके निज नाम लज्जा रखने के लिये इस दास को अपनाइये। हे नाथ अनाथ तथा दुःखी भक्तों की आह बुरी होती है हे त्रिलोकीनाथ! इसे ग्रहण न करना ॥

शेष महेश गनेश दिनेश सुरेश हु जाहि निरन्तर गावें।
जाहि अनादि-अनन्त-अखंड-अछेद-अभेद-सुवेद बतावें ॥
नारद से शुक व्यास रटें पचि हारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोकरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें

दीन-विनय

[ले० श्री मोतीलाल ओमरे 'श्रीहरि']

श्रीहरि भव बाधा हरी, त्रिभुवन पति गोविन्द।
कर कमलन लीन्हें गदा, शंख, चक्र, अरविन्द ॥

घनाक्षरी

नाथ गजराज ग्राह कष्ट से उबार्यो जिमि,
दीन ह्वै प्रेम सहित पद के चढाये से।
'श्रीहरि' मीराहि जिमि आपु भव पार कीन्हो,
गणिका को मुक्ति दीन्हीं कीर के पढायें से।
व्याधा अजामील आदि अधम अगिम्य तारे,
अनजाने अन्तकाल नाम लेय आयें से।
मूढ़ भव चक्र बीच पर्यो हूं अचेत होय,
दीनानाथ मेरी सुधि लेत नाहिं कायें से।

नाम संकीर्तन

(ले० श्री सीताराम शास्त्री वाशिष्ठ)

ऋषि-मुनियों ने अपने शास्त्रों में कृत पातक समुदाय से छुटकारा पाकर परम-पद प्राप्ति के नाना-विध उपाय बतलाये हैं। किन्तु आधुनिक, भजन साधन हीन कलिहत जीवों के लिये जैसा परम हित-कर नाम-संकीर्तन है वैसा अन्य साधन नहीं। पुराण शिरोमणि देवी भागवत में भी लिखा है कि:-

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येकोमहान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥

यह पद्य उपरोक्त पंक्तियों को कितनी सरलता से स्पष्ट कर रहा है कि हे राजन्! दोषों के भण्डार इस कलियुग में एक महान् गुण यह है कि कृष्ण भगवान् के केवल नाम-कीर्तन से ही पातकी अपने पाप बन्धन से मुक्त होकर परम-पद को प्राप्त हो जाता है। अन्य शास्त्रीय मत भी यही है कि-

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्रधर्मे खलु नाधिकारः ॥

तात्पर्य यह कि 'राम' इन दो अक्षरों को सादर स्मरण करता हुआ जीव मुक्ति पा जाता है। इस कलियुग में कलिहत मनुष्यों के लिये राम-नाम के सिवाय दूसरे धर्म में प्रविष्ट होने का किञ्चित् मात्र भी अधिकार नहीं है।

नाम संकीर्तन में विशेषता यह है कि यह संघ

साध्य भी है। कई एक केवल दिखावट समझ कर ही इस से कोसों दूर रहते हैं और कहते हैं कि नामोच्चारण एकान्त में अकेले मनुष्य के लिये जैसा सुलभ है वैसा संघ में नहीं। मेरी धारणा है कि: -

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इत्यादि संघ-साध्य शब्दों में यदि एकस्वर से नामोच्चारण किया जाय तो उस संघ को वह असीम आनन्द मिलता है जो कि धन-धान्य परिवार युक्त सुखी मनुष्य को स्वप्न में भी दुर्लभ है। उस समय आत्मा विकसित हो जाता है, उसके एक २ कण से नाम-ध्वनि निकलती हुई प्रतीत होती है। भक्तवर नरसी जी महाराज जब अपनी मंडली में बैठ कर नामोच्चारण करते थे उस समय वे अपनी सुधबुध भूलकर इतने नाचते कूदते थे कि लोग उनको पागल समझते। परन्तु यह उनका पागलपन नहीं था किन्तु प्रेम लक्षणा भक्ति का एक परिपक्व मनोहर फल था। हमारे शास्त्र तो यहां तक कह बैठे हैं कि:-

'श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि।
तेषां नास्ति भयं पार्थ ! राम नाम प्रसादतः ॥

अर्थात् यह सांसारिक मानव वृन्द श्रद्धा अथवा खेल से ही यदि भगवन्नामोच्चारण करे तो उसको भगवत्कृपा से कहीं भय नहीं रहता।

कैसी सुष्टूक्ति है? कैसा सरल साधन है? यदि ऐसे सरल उपाय को पाकर भी मुँह से जो नामोच्चारण नहीं करता वह अवश्य अभागा है।

भक्त लोग भगवान् को स्वेच्छ या विविध नामों से भजते आये हैं। वे स्वतन्त्र हैं। राम, कृष्ण, हरि आदि सब उस परमात्मा ही के नाम हैं। चाहे जिस नाम से भक्त भगवान् की उपासना कर सकता है। सूर्य, चन्द्र, वायु, अनलादि उसी परमात्मा की विभूतियां हैं। उसके नाम जैसे असंख्य हैं वैसे ही विभूतियां भी अनेक हैं। गीता में कृष्ण भगवान् ने स्वयम् ही कहा है कि:-

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।

सूर्यार्चन, अर्घ्यदान, अग्न्याबाहन, यज्ञादि सभी कृत्य भगवन्निमित्त परक हैं।

भगवती श्रुति में भी इसका समाधान किया गया है। यथा:-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथोदिव्यः सुपर्णो गरुत्मान।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋग्वेद १०-१६४। ४६

तयदिदमाहुरमुं यजेत्येकैकं देव तमेतस्यैव।
सा विसृष्टिरेष उहीव सर्वे देवा॥ शत० ब्रा १४-४-२।१२॥)

इनका यह आशय है कि परमात्मा ही इन्द्र है, मित्र है, वरुण है, अग्नि है, यम है, मातरिश्वा है और समस्त संसार चक्र को घुमाने वाला एक ब्रह्म वही है। इनकी उपासना करने से उसी अमूर्त, अव्यक्त परब्रह्म की ही उपासना होती है। उसी परब्रह्म को विद्वान् लोग इन्द्र, मित्र, वरुण आदि अनेक नामों से स्मरण करते हैं। ये इन्द्रादि इसी ब्रह्म के मूर्त्तस्वरूप हैं। प्रमाणान्तरों से भी इस सिद्धान्त की दृढ़ पुष्टि होती है। जैसे "सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति" -अर्थात् किसी देव को भी नमस्कार करो, वह भगवान् ही के पास जाता है- वेद, पुराण, स्मृत्यादि सदा सभी शास्त्र, भक्त शिरोमणि हनुमान, कविता नभमण्डल मिहिर तुलसीदास, परमभक्त शिव, भक्तवर पार्थ आदि समग्र भक्तवृन्द, व्यास, शुकदेवादि सभी ऋषिमुनि इस नाम-संकीर्तन का कोटिशः वाक्यों से गुणगान

करते हैं। भक्तों के लिये इसका दिग्दर्शन करवा देना अच्छा है। अतः नीचे उपरोक्त शास्त्र, भक्तों द्वारा इसका किञ्चिन्मात्र उद्घाटन किया जाता है-

राम त्वत्तोधिकं नाम इति मे निश्चला मतिः।
त्वया तु तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥
हनुमान्-

हे राम! आप से आपका नाम बड़ा है यह मेरी निश्चयात्मिक बुद्धि है। क्योंकि आपने तो केवल अयोध्या को ही पवित्र बनाया और आपके नाम ने तीनों लोकों का उद्धार किया है।

मधुर मधुर मेतन्मंगलं मंगलानाम्,
सकल निगमवल्ली सत्फलं चितस्व रूपम् ॥
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा,
भृगुवर! नरमात्रं तारयेत्कृष्ण नाम ॥

हे भृगुवर! श्री कृष्ण नाम सकल निगम-लताओं का सत्फल, चैतन्यरूप, मंगलों का मंगल और मधुर से मधुर है। श्रद्धा से लिया हुआ तो यह सब का उद्धार करता ही है, किन्तु जो मनुष्य अज्ञान से भी यदि इसका उच्चारण करे तो वह भी भव बन्धन से छूट जाता है॥

अविकारी विकारी वा सर्वदोषैक भाजनः।
परमेश पदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ शिव-

ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी वा सब पापों का पात्र हो, किन्तु राम नाम-संकीर्तन से वह भी परम-पद को प्राप्त हो जाता है।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या, तपो यज्ञ क्रियादिषु।
न्यूनं च सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

जिसका स्मरण करने से अथवा नाममात्र लेने से तप, यज्ञादि क्रियाओं की न्यूनता पूर्ण होती है, उस कृष्ण भगवान् को बार २ नमस्कार करता हूं।

तमुस्तोतारः पूर्व्ये यथाविदः; ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन, महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे

अर्थात् जो लोग जन्म, मरण के झगड़ों से छूटना चाहें वे जगत्कारण भूत, अनादि परमात्मा की स्तुति करें। जो इसमें भी असमर्थ हैं वे भगवन्नाम का उच्चारण मात्र ही करें, उनको भी वही फल मिलेगा।

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है।
सुमिरे त्रिविधधाम हरत पूरतकाम सकल सुकृत सरसिज सरुहै

हे रामचन्द्र जी! आपका नाम सन्तों के लिये कल्प वृक्ष है। इसके स्मरण से तापत्रय नष्ट हो जाता है। सकल कमना पूर्ण होती हैं। यह नाम पुण्य रूप कमलों का सरोवर है।

मन से

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम]

मनरे छोड़ कपट की बान।

बीत गये दिन बहुत भजन बिन अब तो चेत सयान ॥१॥
तजि सत्संग कुसंग में भटक्यो लालच वश ज्यों श्वान॥२॥
गुरु मति सुनि विमुख ह्वै भाषो यहि विधि रह्यो अजान ॥३
सुख हित लागि अनेक यतन करि पच पच मरयो मदान॥४॥
धन गज बाजि बहुत संचित करि सुख तजि चलत विमान ॥५॥
कबहु विभूति रमाय बतन पर सेवत चण्ड श्मशान ॥६॥
कपट गाँठ टूटे नहिं जबलौं दुःख दारिद्रय महान ॥७॥
प्रभु पद निश्चय लाग पियारे सुनि हैं कृपा निधान ॥८॥

गोपदेवी लीला

गतांक से आगे।

[ले० भक्त शिरोमणी श्री मधुराप्रसाद जी]

यः कृष्ण सोपि राधा च या राधा कृष्ण एव सा।
अनयोरन्तरादर्शी संसाराम्न विमुच्यते ॥

जो कृष्ण हैं सोई राधा हैं, जो राधा हैं सोई कृष्ण हैं जो इनमें भेद मानत हैं वे मुक्ति नांहि पावत हैं ॥

द्वयोरप्येकेन भेदस्याद्दुग्धधावल्ययोर्यथा।

जैसे दूध की सफेदी दूध से न्यारी नहीं है वैसे ही कृष्ण से राधा न्यारी नहीं हैं ॥

राधिका कृष्ण रूपेण कृष्णो राधा स्वरूपकम्।
उभौ तौ प्रेम संबद्धौ न कामे न कदाचन॥
परस्पर मनोवृत्ति स्वातंत्र्येणैव जायते।
न भिन्ने नापि कामेन सहजप्रेम वर्द्धनम्॥२॥

राधा कृष्ण और कृष्ण राधा रूप में है दोनों प्रेम करिके बंधे हुयेहैं। प्रेम की वृद्धि दोनों मे स्वाभाविक है काम करिके नहीं। फिर ग्वालबाल यह पद गाते हैं:-

प्यारी तन श्यमा श्यामा तन प्यारो।
प्रतिबिम्बित तन अरस परस दोउ ॥
एक पलक दिखियत नाय न्यारो।
ज्यों दर्पण में नैन नैन में ॥
नैन सहित दर्पण दिखवारो ।
श्रीभट जोट की आति छवि ऊपर ॥
तन मन धन न्योछावर वारो ॥

फिर श्री महाराज कहते हैं, हे ललिते ! लौकिक व्यवहार में मो कूं प्राप्त व्हेवेकूं प्रेम ही करनो अवश्य है और कोऊ उपाय नाय है। पूरन भक्ति को चिन्ह पूरन प्रेम ही है तुम उनको धीरज दीजियो और विश्वास कराइयो कि मनोरथ अवश्य पूरन होवगो और अपने मते को यह पद गाके समझाते हैं।

सखी सुनो चित धारि सयानी निजमति को तोहि सार सुनाऊं
मम माया को पार न पावें ब्रह्मादिक देवहु भरमावें ॥
जोजन मोमें प्रेम दृढावें ताहि अवधि भव पार लगाऊं ॥१॥
काऊ यतन कोऊ मोहि न पावें साधन करिर आयु वितावें ॥
मन मेरे सोई जन आवें जाहि कृपाकरि मैं अपनाऊं ॥२॥
साँचो प्रेम हिये में जाके हौं आधीन रहत हौं ताके।
पाछें २ डोलूं वाके तासु चरण रज सीस चढ़ाऊं ॥३॥
विरह जो उपजै प्रेमी कं तन ताकोस्वाद लेत प्रेमी जन।
वासों अधिक विकल मेरो मन क्षण २ तापे वारी जाऊं ॥४॥
राधा मेरी प्रेम की निधि है प्राणजीवन सोई रस निधि है।
वोही सुखद मोहि सब विधि है हौं मधुरेश ताहि नितगाऊं ॥

यह पद गाते २ श्री महाराज का गला रुक जाता है। नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगती है, और वह भी श्री राधे२ रटने लगते हैं। ललिता बड़े यतन से चेत कराती हैं और आज्ञानुसार श्री जी के पास लौटकर आती हैं और वहां पहुंच कर दूर से ही प्रफुल्लित मनसे हाल कहने लगती हैं। ललिता वचन— हे शुभे! धन्य है आप धन्य हैं जैसे तुम उनको चाहती हो तासे अधिक वे तुमको चाहैं हैं, उनसे मिलबे को निष्काम कर्म ही करनो योग्य है, याही परम भक्ति से तुम को मन वांछित फल मिलैगो। यह सुनकर श्री राधा राजेश्वरी चंद्रानना सखीको बुलवाती हैं और कहती हैं तू ने धर्म शास्त्र सुने हैं मोकुं कोऊ व्रत अथवा पूजन ऐसो बताय जासों मनोरथ शीघ्र सिद्ध होय।

चन्द्रानना सखी बहुत विचार करके श्री तुलसी जी को पूजन बताती हैं और उसको पूरन विधि और प्रेम से श्रीजी करती हैं। शरद पूनों से चैत की पूर्णिमा लों बड़े जतन और उमंग से सेवा किन्ही कार्तिक में दूध से, अगहन में ऊख के रससे, पूष में दाख के रससे, माघमें आमके रससे, फागुन में मिश्री के रस से, और चैत में पंचामृत से सींच बैशाख की पड़वा को बड़े यत्न और हर्ष से उद्यापन कियो अनगिन्त वस्त्र और आभूषण दान किये और गर्ग मुनि को मनन सोना दियो। आकाश में नौबति बजने लगी अप्सरायें नृत्य करने लगीं उसी समय हरि की प्यारी तुलसी जी सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान प्रकट हुईं और श्री जी ने विधि पूर्वक बड़े प्रेम से उनको सन्मान कियो और यह स्तुति गाकर सुनाती हैं:-

जय जय हरि प्यारी देवी सुन्दर वपु धारिणी।
पाप ताप हारिणी समस्त मोद कारिणी॥
तुम्हरी महिमा अपार वेदन नहि पायो पार।
हरि की जीवन अधार जन मन दुख हारिणी॥
मथुरा पति तव अधीन सकल कलागुण प्रवीण।
दीन दया धारिणी प्रपंच सिन्धु तारिणी॥ जय०

तुलसी जी बहुत ही प्रसन्न होती हैं और वरदान देती हैं। श्रीतुलसी वचन, जो इच्छा से तुमने यह यज्ञ कियो है सो पूरन होय और तुम्हारो सौभाग्य नित्य ही सराहने योग्य बनो रहे। श्रीजी बोलीं-हे शुभानने आपकी जयहो मेरी प्रीति श्री श्याम सुन्दर के चरणों में होय और निष्काम भक्ति निरंतर नित्य रहै।

श्री तुलसी जी "एवमस्तु" अर्थात् ऐसा ही हो यह कहके अंतर्ध्यान होजाती हैं। इसके उपरान्त, श्री महाराज को जब यज्ञ का हाल मालुम हुआ तब वह गोप देवी का परम मनोहर और अति सुन्दर रूप बना कर श्री जी के प्रेम परीक्षा के कारण वरसाने की ओर चले उनकी शोभा अकथनीय है और अनेक भांति के मन हरन भूषण सोने में सुहागा का काम कर रहे हैं। जब वह श्रीजी के भवन के पास पहुंचते हैं जो खूब सजा हुआ है।

अपूर्ण

प्रेम की विजय

(ले० श्री रामसेवकसिंह 'श्याम')

रजनी का समय है। चारों दिशाओं में घोर अन्धकार छाया हुआ है। रहरकर उलूक, तथा हिंसक जीवों का भयंकर चीत्कार लोगों के हृदयों में प्रवेश कर घबड़ाहट पहुंचा रहा है। ऐसे अवसर में भागीरथी के तट पर, एक एकान्त कुटी की ओर चार चोर आपस में धीरे २ बात चीत करते हुए चले जा रहे हैं। देखतेर वे कुटी के दरवाजे तक पहुंच गये। पर वे वहां एक भव्य मूर्ति को देख एका एक पीछे हट कर आश्चर्य्य दृष्टि से भयभीत हो, उस ओर ताकने लगे। उन में से एक साथी अपने मित्रों को, धीरे से यह वचन बोला:-

ऐ! नीत को वह हैं खड़े, पकड़े धनुष डोरी।
हैं वर्ण श्यामल गौर का, खिचते धनुष डोरी॥
यह अद्भुत छटा को देखि कर, सुधि खो रही मेरी।
इन से फैलती उज्वल प्रभा, भागो हुयी देरी॥१॥

अपने साथी के यह वचन सुन संभल चोर लोग भागे और अलग जाकर आपस में अनेक कुतर्कना करने लगे। कोई कहता कुछ, तो कोई कुछ और अन्य कहता कुछ। इसी प्रकार वाद विवाद में भोर हो गया, तब एक साथी ने सोचते २ यह वचन कहा कि, ऐ मीत! हमारी समझ में यही आता है, कि वे श्री गोस्वामी जी के आराध्य देव थे!

साथी की बात सुन कर, उन सब के हृदय में खल बली सी मच गयी और वे आनन्द में मग्न हो कर, अपने को धन्य समझने लगे, कि हमने गोस्वामी जी के प्रताप से प्रभु का दर्शन पाया, और जन्म२ का पातक गंवाया। पाठक! आप समझ गये होंगे कि ये वही चोर थे, जो नित्य प्रति श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के बर्त्तनों को चुरा कर ले जाया करते थे।

प्रातःकाल का समय है। श्री गोस्वामी जी स्नानादि क्रियाओं से निपटेरा कर के, पीपल वृक्ष के नीचे बैठ हरि चिन्तन कर रहे हैं। पास ही कुछ हट कर चार मनुष्य हाथ जोड़े हुए अलग खड़े हैं। गोस्वामी जी ने ध्यान तोड़ने के उपरान्त आगे की ओर दृष्टि की, तो उन्हों ने मनुष्यों को हाथ जोड़े हुए देख, इसका कारण पूछा! गोस्वामी जी को अपने ऊपर कृपा करते देख, चोर लोग प्रेम के मारे विह्वल हो गये, और उनमें से एक, प्रेम की अश्रु वर्षा करता हुआ रात्री की समस्त वार्ता श्री गोस्वामी जी से कह कर बोला:-

हैं साहिब सीतानाथ से, मैंने किया चोरी।
मैं दर्शन स्वामी का पाया; बुड़यो पापकि बोरी॥
बनालो अब दास प्रभुवर, गुरुवस्तु शिष्य मैं तेरी।
वह शिक्षा दो हमें गुरुवर, बन्धे प्रेम की डोरी॥

श्री गोस्वामी जी; चोरों के मुख से यह वचन सुन कर आप भी प्रेम सागर में, गोते खाने लगे। और बड़े हर्ष से, चारों चोरों को हृदय से लगाया और उन्हें उत्तम शिक्षा दी। श्री गोस्वामी जी ने उसी दिन अपने सारे बर्त्तनों को लुटा दिया और फिर किसी चीज से ममता रखना छोड़ निश्चित हो प्रभु भजन करने लग।

चोर लोग गोस्वामी जी के शिष्य बन गये। और सत्संग अर्थात् सत् पुरुष के दर्शन के फल से सच्चे भगवद्भक्त बन गये, और प्रभु की आराधना करते २ अन्त समय परम पद को पाया। अतः पाप का नाश और प्रेम की विजय हुई।

भजन

हौं इक नई बात सुनि आई॥ टेक॥
महरि यशोदा ढोटा जायो, घर घर बजत बधाई।
द्वारे भीर गोप गोपिन की, महिमा बरणी न जाई॥
अति आनन्द होत गोकुल में, रत्न भूमि निधि छाई।
नाचत तरुण वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई॥
सूर दास स्वामी सुख सागर सुन्दर श्याम कन्हाई।

२

जागिये गोपाल लाल जननी बलि जाई॥ टेक॥
उठो तात भयो प्रात रजनी को तिमिर गयो,
खेलत सब ग्वाल बाल मोहन कन्हाई॥ १॥
उठो मेरे आनन्द कन्द किरण चन्द मन्द मन्द,
प्रकटयो आकाश भानु कमलन सुखदाई॥ २॥
सखी सब पूरत धेनु तुम बिना न छुटे धेनु,
उठो लाल तजो सेज सुन्दर बर राई॥ ३॥
मुख ते पट दूर कियो यशुदा को दर्श दियो,
माखन दधि मांग लियो विविध रस मिठाई॥ ४॥

जैसत दोऊ राम श्याम सकल मंङ्गल गुण निधान,
जूठनि रहि थार में सो मान दास पाई ॥५॥

२

जागिये ब्रजराज कुंवर कमल कोश फूले ॥ टेक ॥
कुमुद वृन्द सकुच भये भृङ्ग लता भूले ॥
तमचर खग शोर सुन्यो बोलत बन राई ।
रांभत गौ खोर देन बछरा हित धाई ॥
विधु मलिन रवि पूकाश गावत ब्रज नारी ।
सूरश्याम प्रात उठे अम्बुज कर धारी ॥

४

मोहन जाग हौं बलि गई ॥
ग्वाल बाल सब द्वार ठाढे बेर बन को भई ।
पीत पट कर दूर मुख से छांड दे अल सई ॥
अति अनन्दित होत यशुमति देख सुत नित नई ।
सूरके प्रभु दर्श दीजे अरुण किरण छई ॥

५

नन्द नन्दन वृन्दावन चन्द ॥ टेक ॥
यह कहि जननि जगावत लालन जागो मारे आनन्द कन्द
आलस भरे उठे मन मोहन चलत चाल दुम कत अति मन्द
पोंछि वदन अंचल सों यशुमति उरलगाय उपज्यो आनन्द
सबब्रज युवति आई देखनको दर्शन होत मिट्यो दुख द्वन्द
ब्रज पति श्रीगोपाल परि पूरण जाको यश गावत श्रुति छन्द

६

इस नन्दके फरजन्द ने बांकी अदा धरी ॥ टेक ॥
भौंहें कमान झुक रहीं गोशे से आ मिली ।
तिरछा मुकुट धर शाश पर मुरली अधर धरी ॥१॥
कानों में कुण्डल झलकते गल मोतियों की लरी ।
चितवन जो तेरी भाला जिन घायल मुझे करी ॥२॥
शिर मुकुट सोहे मोरका और पाग जर करी ।
इमि सूर कहै श्याम सों धन्य आज की घरी ॥३॥

७

सफल जन्म मेरो आज भयो ॥ टेक ॥
धनि गोकुल धनि नन्द यशोदा,
जिनके हरि अवतार लियो ॥१॥
प्रकट भयो पुष्प अब सुकृत फल,
दीन बन्धु मोहिं दर्श दियो ॥२॥
बारंबार नन्द के आंगन,
लोटत द्विज आनन्द भयो ॥३॥
मैं अपराध कियो बिन जाने,
को जाने किहि वेष जियो ॥४॥
सूरदास प्रभु भक्त हेतु बश,
यशुमति के अवतार लियो ॥५॥

८

सुन सैत एक कथा कहुं प्यारी ॥टेक॥
कमल नयन मन आनन्द उपज्यो,
रसिक शिरोमणि देत हुंकारी ॥
दशरथ नृपति हुते रघुवंशी,
तिनके प्रकट भये सुत चारी ॥
तिन में राम एक व्रतधारी,
जनक सुता ताकी वर नारी ॥
तात वचन सुनि राज्य तज्यो है,
भ्राता सहित भये वन चारी ॥
उहं तिन जाय कनक मृग मार्‌यो,
राजिव लोचन गर्व पहारी ॥
रावण हरण सिया को कीन्हो,
सुनत श्याम घन नींद बिसारी ॥
सूर श्याम प्रभु रटत चाप को,
लक्ष्मण देहु जननि भ्रम भारी ॥

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुवीरसिंह जी सांधोवालिया राजा बांसी अमृतसर	१११)
पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां	१२०)
धर्म सीह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ ऐग्रीकल्चर लाहोर	”
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	”
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	५०)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लछमादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	”
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	”
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	”
श्री भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	”
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी ”	”
लाला कृष्णलाल जी जींद	२१)
लाला भागीरथमल कटरा लच्छूसिंह देहली	२१)

सहायक

पि. टी. शाह जयपुर	१३)
जमादार उमरावसिंह भाडावास	१०)
राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर	१०)
चौधरी हुकमसिंह जी निखरी	११)
लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	१०)
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा	१०)
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	,,
माई गुलाबोदेवी दिल्ली	५)
लाला बनारसीदास दिल्ली	५)
महाशय शादीराम जी भस्तापुर, रेवाड़ी	५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ।	५)
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
रा० ब० लखनारायण सिंह जी बाढ, पटना	५)
डा० बैजनाथसिंह यनंगयोंग, बर्मा	५)
ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर	,,
बड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी	,,
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली	,,

बाबू रामस्वरूप गनेश मलि	,, ५)
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
लाला प्रभुदयाल जी फरुखनगर	,,
त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा	,,
बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	,,
रा० सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर	,,
पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर	,,
श्रीमान् धानी चन्द लाहौर	५)
श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
श्रीमती दुर्गादेवी भिवानी	५)
डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली	५)
हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर	५)
सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी	५)
भूरसिंह माजरा, अलवर	,,
मोहकमसिंह बाघणकी	,,
डा० इन्द्रसेनजी पुरी, रेवाड़ी	५)
श्री० कृष्णा पुत्र ला० प्रभूदयाल दादरी	५)
ठाकुर बाबुलाल कन्हैयालाल जी मथुरा	५)
श्री हाकानन्द जी बर्मा मथुरा	५)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		३९३
२. भगवद्भक्ति [	ले० श्री० भोले बाबाजी	३९४
३. अस्पृश्य कौन है [	ले० श्री	४००
४. एक भक्त के उद्गार [	ले० एक पागल	४०४
५. ब्रह्मविद्या [	पं० श्रीरेवाधर जी पाण्डेय	४०५
६. वियोग-व्यथा (कविता) [	ले० "श्रीपति"	४०९
७. मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकाशा [	ले० स्वामी आत्मानन्द जी	४१०
८. सौन्दर्य [	ले० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल"	४१३
९. प्रेमियों का प्रेम प्रलाप [	ले० श्री० दुर्गाप्रसाद जी गुप्त	४१४
१०. दुःखी भक्त [	ले० श्री वैकुंठनाथ विद्यार्थी	४१६
११. दीन-विनय (कविता) [	ले० श्री मोतीलाल जी 'श्रीहरि'	४१८
१२. नाम संकीर्तन [	ले० श्री सीतारामजी शास्त्री	४१८
१३. मनसे (कविता) [	ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम	४२०
१४. गोपदेवी लीला [	ले० श्री भक्त शिरोमणी श्री मथुरा प्रसाद जी	४२१
१५. प्रेमकी विजय (	ले० श्री रामसेवक सिंह 'श्याम'	४२२
१६. भजन		४२३

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषत्	,,	।=)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥।
६	ज्ञान भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
७.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	-)।
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१०.	सारसंग्रह	,,	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
१२.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१३.	भगवदंक	,,	॥।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।